नवजीवन-प्रकाशन-मंदिरका प्रथम पुष्प

# अन्तिम इच्छा

( १५ क्रान्तिकारी कहानियों का संग्रह )

—○○○—

लेखक—

श्रीयुत गङ्गा प्रसाद 'कौशल'



प्रकाशक—

दि बङ्गाल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स
१, सीनागोग स्ट्रीट,
कलकत्ता-१

प्राप्तिस्थान :—

बम्बई बुक डिपो
१६५।१, हरिसन रोड,
कलकत्ता-७

द्वितीय संस्करण ] [ मूल्य २)

# मेरा दृष्टिकोण

'अंतिम इच्छा' मेरी १५ क्रान्तिकारी कहानियोंका संकलन है। इनमेंसे कुछ कहानियोंकी सृष्टि पेशावर तथा ऐबटाबाद (सीमाप्रान्त) की मनोहारिणी पहाड़ियोंपर हुयी थी। नन्दना और हेरो नदियोंके चञ्चल प्रवाहने भी इनमें अपनी गति दी है।

मैं कहानियोंको यथार्थतासे दूरकी चीज़ नहीं मानता। हाँ, यह ज़रूर है कि कहानीरूपी उपवनके इधर-उधर कुछ लहलहाते हुए बेलबूटे लगा दिये जायँ। मैंने प्रायः अपनी अधिकांश कहानियाँ अपने जीवनसे ही ली हैं। हाँ, यह ज़रूर है कि उनमें गति लानेके लिए मैं कल्पना-परीके पंखोंपर बैठकर कुछ उड़ा भी हूँ। 'विरह और मिलन' के प्लाट—रसिकोंको मेरी कहानियोंसे निराशा होगी। मेरी कहानियोंमें उस प्रेमका जिसे हमारे अधिकांश भाई वासनाके रूपमें देखनेके आदी हो गये हैं। सर्वथा अभाव होगा। इसका आशय यह नहीं कि मैं प्रेमी जीव नहीं, किन्तु मेरी प्रेम परिभाषा दूसरी है। प्रेम और वासना दो दुनियाकी चीजें हैं। कवि कितना ठीक कहता है :—

कौन कहता—"दो दिनका प्यार और फिर कभी रहेगा नहीं,
धधककर कभी जलेगी चिता, जलेंगे गोरे गोरे अंग,
और पागल प्राणोंका प्यार, जलेगा कभी चिताके संग।"
मानता हूं, गंगाके पार, चितामें जल तन होगा क्षार,
किन्तु यह कभी जलेगा नहीं, हमारा अजर अमर है प्यार।
चिता ले जलती मांसल अंग, चिता ले जलती है अभिमान,
ईर्षणा, द्वेष और छल-छद्म, चितामें ज्ञान और विज्ञान"।
किसी की हस्ती रहती नहीं, वासनाका होता है नाश,
सिसककर जल जाते अरमान, साथ ही महामोहके पाश।
किन्तु अपना है ऐसा प्यार कि जिसका प्रलयंकर अंगार;
मुदित हो होकर अपने आप, करेंगे लपटोंसे अङ्गार।
वासना ही होती है नष्ट, प्यारका कभी नहीं है अंत,
लिए मुस्काता वह अमरत्व और जीवन भी प्रिये! अनन्त।

समझनेपर दोनोंका अर्थ, विश्व यह कभी कहेगा नहीं,
कौन कहता—"दो दिनका प्यार और फिर कभी रहेगा नहीं।"

कितना ज़बर्दस्त आशावादी है कविका हृदय! कितना विश्वास है उसे प्रेमकी अमरता पर। उसका प्रेम एक ही जन्म है खत्म होनेवाला नहीं—वह युग-युग तक चलता है। जीवन अनन्त है ही—फिर उसे किस बातका भय? प्रिय यदि रूठता है तो भी उसे परवा नहीं। वह प्रेम किये जायेगा। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।' मैं ऐसे ही प्रेमका पक्षपाती हूँ।

मेरी कहानियोंके पात्र मनुष्य हैं और उनमें मनुष्यता कहलानेवाली चीज़ है। मैं उन समालोचक बन्धुओंकी क़द्र करता हूं जो कहते हैं कि कहानी या उपन्यासके पात्रोंको 'राम' बनाकर लेखक ग़लती करते हैं, किन्तु मैं यह नहीं चाहता कि मेरे पात्र कामुकता और विलासिताकी प्रति मूर्ति बन जायँ। वे पतनके गहरे गढ्ढे में गिरें और अपने साथ पाठकोंको भी ले गिरें। हाँ, उनमें मानवोचित निर्बलता हो; किन्तु पतनकी मादकता न हो। मैं यथार्थवादिताके पंखोंपर बैठकर आदर्शवादिता तक पहुँचना पसन्द करता हूं; किन्तु यदि मेरी यथार्थवादिता सौ मनुष्योंको पथभ्रष्ट कर दे तो मुझे वह मान्य नहीं।

मैं उस साहित्यको साहित्य नहीं मानता जो मनुष्यमें जीवन नहीं फूंकता।

मैंने अपनी प्रत्येक कहानीमें एक-न-एक गुत्थीको सुलझानेका पूरा प्रयत्न किया है। किसी-किसी कहानीमें तो पाठकोंके लिए एक समस्या छोड़ मेरा कथाकार आगे बढ़ गया है।

मैंने संक्षेपमें कहानी-विषयक अपना दृष्टिकोण पाठकोंके समक्ष रखा है। उनका अधिक समय नष्ट करना मुझे अभीष्ट नहीं। कहानियाँ क्या हैं, कैसी हैं, पाठक जानें। हाँ, यदि मेरी कहानियाँ पाठक-पाठिकाओंपर कुछ अधिक प्रभाव डाल सकीं तो मुझे बेहद खुशी होगी—केवल उनके मनोरञ्जनसे ही मैं सन्तुष्ट होनेवाला जीव नहीं।

शरबती भवन, कदमकुआँ पटना।
स्वाधीनता-दिवस १९६४

गङ्गाप्रसाद 'कौशल'

# विषय-सूची

—०—



—०○०—

# काव्यका हीरो

वह कवि था। बैठा कुछ गुनगुना रहा था। कविप्रिया पास ही चारपाईपर थीं। कविप्रिया कह रही थीं "न जानें आप कैसे कवि हैं? कितने महीने हो गये, पर लेखनीको छुआ तक नहीं। मैं चाहतीं हूँ कि आप कम-से-कम दो कविताएँ रोज़ लिखा करें और प्रत्येक महीने एक खण्ड काव्य। रही महाकाव्यों-की बात, तो वह सालमें एक ही सही।"

"प्रिये! रहने दो। छेड़छाड़ मत करो। मुझे गुनगुनाने दो, इसीमें आनन्द है। यदि कवि स्वान्तः सुखाय कविताओंकी सृष्टि करता है, तो बस मुझे इसीमें परमानन्द प्राप्त होता है। क्यों व्यर्थ लेखनीको घिसूँ और कागजको काला करूँ?"

"आप कैसी बातें करते हैं! यदि ऐसा ही था तो आपने इतने ग्रन्थ अभीतक क्यों लिखे? आप भूले बैठे हैं कि कविके कार्यकी इति-श्री स्वान्तः सुखाय कविताएँ लिखकर ही हो जाती है। कवि राष्ट्रका सबसे बड़ा निर्माता तथा कर्णधार है। उसकी भावभङ्गीमें आँधी तथा उसकी वाणीमें बिजली है। राष्ट्रोंके उत्थान तथा पतनमें उसका पूरा-पूरा हाथ है। वह चाहे तो अपनी

ओजस्विनी वाणीसे बड़े-बड़े साम्राज्योंकी नींव हिला सकता है—उन्हें नेस्तनाबूद कर सकता है।"

"मैं यह सब मानता हूँ प्रिये! परन्तु .............।"

"परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं, आप एक महाकाव्य लिखना आरम्भ कीजिए।"

"सोचता तो मैं भी यही हूँ, परन्तु ..........."

फिर वही परन्तु!"

"नहीं, कारण यह है कि मुझे अपने महाकाव्यके लिये हीरो नहीं मिलता!"

"हीरो, नायकोंकी क्या कमी है आर्य पुत्र?"

"अच्छा तो तुम दो-चार नायकोंके नाम बतलाओ।"

"लीजिए, महाराणा प्रताप"

"हुँ"

"रामचन्द्र, भरत"

"बिलकुल नहीं"

"लक्ष्मण भी नहीं"

"लक्ष्मण और शत्रुघ्न कुछ भी नहीं"

"अच्छा तो उन्हें जाने दीजिये, और लीजिए—अशोक, चन्द्रगुप्त, गोविन्दगुप्त, कुमारगुप्त, स्कन्दगुप्त, राजसिंह, महाराणा, सँगा, भीमसिंह, जयमल, फत्ता"

"हु"

"क्या कोई पसन्द नहीं आया?"

"नहीं"

"अच्छा मैं समझ गयी। आपकी रुचि स्त्रियोंकी ओर अधिक है—तो फिर लीजिए—सीता, उर्मिला, अनसूया, दमयन्ती, पद्मिनी, दुर्गावती।"

"नहीं, यह बात तो नहीं, परन्तु हाँ, मैं दो या तीन खण्डकाव्य ऐसे अवश्य लिखूँगा, जिसमें स्त्री 'हीरोइन' हो; परन्तु अभी नहीं। अभी तो मैं हीरोकी ही तलाशमें हूँ"—कविने मुस्कुराते हुए कहा।

"ओहो आप इतने बड़े कवि हैं, पर आपको इतना भी ज्ञान नहीं कि आप इतने करोड़ों में से अपने काव्यका हीरो खोज लें!" कविप्रियाने व्यङ्गपूर्वक कहा।

"प्रिये! मैं बड़े पसोपेशमें हूँ। जैसा हीरो मैं चाहता हूँ, वैसा नहीं मिलता।"

"आप कैसा हीरो चाहते हैं?"

"हीरोमें सभी हीरोचित गुण होने चाहिए।"

हाँ, वीर हो, धीर हो, दृढ़प्रतिज्ञ हो, वृषभ-केसे कन्धे हों, आजानुबाहु हो, सुन्दर हो, गठीला हो, तेजवान हो, इस्पात सा शरीर हो, मस्तक ऊँचा हो हिमालय-सा"

"हाँ ये तो सभी—वरन् इससे भी ज्यादा हीरोचित गुण तो उसमें होने ही चाहिये। परन्तु जो गुण मैं चाहता हूँ—वह है जो मैं तुम्हें नित्य शिक्षाके रूपमें देता हूँ—जो तुम्हारा सर्वनाश करे, उसके प्रति दयालु हो—जो तुम्हारे दिलको दुखाये, उसके

दिलको तुम सुख पहुँचाओ। अपने अनिष्टकारीके अनिष्टका चिन्तन स्वप्नमें भी न करो, और प्रिये! मैं ऐसा ही हीरो चाहता हूँ। तलवार के धनी कितने ही हीरो मैंने देखे और उनपर काव्य भी लिखे। अब वे पिष्टपेषण मात्र हैं।"

"आप तो लगे अपनी बीती सुनाने। रोज मुझे दबाते रहते हैं। कल उस पड़ोसीकी लड़कीने मेरी बच्चीके गालपर तमाचा मार दिया और आप, उसे डाँटना दूर रहा, उस दुष्ट लड़कीके सिर पर हाथ फेरकर प्यार करने लगे। मैं कुछ कहूँ कि उसके पहले ही मुझे क़सम दिलाकर चुप कर दिया।"

"प्रिये! मुझे अपने और परायेमें अब कुछ अन्तर ही नहीं प्रतीत होता—

'मिट गया अस्तित्व मेरा ; कौन मेरा, कौन तेरा ?

"यह बात आप जैसे प्रगतिवादीको शोभा नहीं देती ; तो फिर क्या आप पलायनवाद के उपासक हैं ?"

"हुँ" मैं उस प्रगतिवादको दूरसे ही प्रणाम करता हूँ, जो आपसमें प्रेम तथा श्रद्धाके स्थानमें कलह तथा वैमनस्य पैदा करे।"

"मैं तो आपसे सब तरहसे हारी।"

१

निशीथ काल था। निशानाथ बादलोंसे लुक-छिपका खेल खेल रहे थे। सामने ही नारियल तथा सुपारीके वृक्ष प्रहरीसे खड़े बड़े भले प्रतीत हो रहे थे। कवि तथा कविप्रियाकी खाटें पास ही पास बरामदेमें पड़ी थीं। कुछ दूर एक छोटी खाट थी

जिसपर कविप्रियाकी सात सालकी बच्ची सुषमा सो रही थी। कविकी खाटसे थोड़ी दूर पर एक जलाशय था जिसमें कुछ शशि-बालाएँ इठला रही थीं। यों तो वातावरण शान्त था, परन्तु यदा-कदा गीदड़ोंकी 'हुआ, हुआ' की आवाज कानोंमें अवश्य पड़ जाती थी। कभी-कभी दो एक कुत्ते भी भौंक उठते थे।

कवि गुनगुना रहा था—

"उठ-उठ वज्र लेखनी लिख दे,
महाकाव्य कितने ही सुन्दर।"

एकाएक किसीने दरवाज़ा खटखटाया। कविप्रिया निद्रादेवीकी गोदमें मीठी-मीठी झपकियाँ ले रही थीं। कवि उठा। कन्धोंपर केश छहर उठे।

"कौन है ?" कविने दरवाजा खोलते हुए पूछा।

"मैं शरणार्थी हूँ"—आगन्तुक ने उत्तर दिया।

"तुम्हें किसका भय है भद्रजन ! आओ अभय रहो"—कविने कहा।

"प्रभो ! आप यशस्वी हों। मैं नराधम हूँ। सम्राट् अकबरके शक्तिशाली सेनापति कुछ सैनिकों सहित मेरे पीछे हैं। मैं क़ातिल हूँ। वे मुझे ज़िन्दा ही ज़मीन में गाड़ देंगे। मैंने एक बेगुनाहका खून किया है। मुझे जीवन-दान दो प्रभो !"

"भद्रजन ! प्राचीन कालमें अपराधीको दण्ड उसे सुधारनेके लिये दिया जाता था। दण्ड देनेका उद्देश्य अपराधीको सुधारना था। तुम अपने कियेपर पछताते हो। तुम्हारा सुधार हो गया।

आओ, समय थोड़ा है, खाटपर चादर तानकर सो जाओ।"

"धन्यवाद"—कहता हुआ आगन्तुक कविकी चारपाईपर जाकर सिकुड़कर लेट गया।

कविने जल्दीसे दरवाज़ा बन्द किया। कवि-प्रियाको जगाकर पासवाली कोठरीमें भेज दिया और सब बातें संक्षेपमें समझा दी। तत्पश्चात् कवि स्वयं कवि-प्रियाकी खाटपर लेट गया।

कवि गुनगुनाने लगा—

"उठ-उठ वज्र लेखनी लिख दे,
महाकाव्य कितने ही सुन्दर।"

"मेरे बहादुरो! हत्यारा इसी तरफ"—सेनापतिकी आवाज़ सुनसान वायुमण्डलमें गूँज उठी।"

सैनिक नंगी तलवारें लिये घूम पड़े।

दरवाज़ा खटकने लगा।

"कौन है?"—कवि कड़े स्वरमें बोला।

"दरवाज़ा खोल दीजिए—हम सम्राट्के सिपाही हैं।"

"सम्राट्के सिपाहियोंका रातमें एक कविको कष्ट देनेका मतलब?"—कहते हुए कविने दरवाज़ा खोल दिया।

"कविराज! मुझे मुआफ़ फ़रमायें। मुझे यह नहीं मालूम था कि यह मकान आपका है। मैं आलीजाह शाहंशाह अकबरकी मगरिबी फौजका सिपहसालार हूँ। मुझे यह बतलाते बड़ा अफसोस होता है कि आज आपके बेटेके सीने में एक हत्यारेने छुरा भोंक दिया। आप जानते हैं कि शाहंशाहको आपका बेटा कितना

प्यारा था ? कितना सुन्दर गाया करता था। वह हत्यारा इसी ओर भागा था और मेरे सिपाहियोंने उसे आपके घरकी ओर मुड़ते देखा था।"

"ओह, सेनापति, तो क्या मेरी आँखोंका तारा, मेरा दुलारा अब इस दुनिया में नहीं है ?"—कवि रो पड़ा।

"कविराज ! आप दुःखी न हों। बादशाहका हुक्म है कि हत्यारेकी बोटी-बोटी उड़ा दी जाय—उसे कुत्तोंसे फड़वाया जाय। शाहंशाहको भी इसका बड़ा दुःख है। हम भरपूर कोशिश करेंगे और हत्यारेका सिर आपके पास जरूर लायेंगे।"

उधर क़ातिल काँप रहा था। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हुआ चुप-चाप पड़ा था।

कवि कह रहा था—"सेनापति ! अब उसके कातिलका मारनेसे क्या लाभ ? क्या उसके मारे जानेसे मेरा पुत्र मुझे मिल जायगा ? मेरा बेटा तो मर गया। सेनापति, जाओ सम्राट्से कह दो कि अब उस क़तिलको क्षमा करें। क्या मालूम उसके मारे जानेसे एक दूसरा पिता भी मेरे ही समान हो जाय।"

"कविराज ! मुआफ़ करें। क़ातिलको पकड़ना है। शाहंशाह-का हुक्म है। देर करनेसे फिर उसका हाथ आना मुश्किल है। कवि चुप था। सैनिक आगे बढ़ चले।

कविने दरवाज़ा बन्द कर दिया। कवि-प्रिया चीख पड़ी। कविने उसे हृदयसे लगा लिया और कहा—

"छिः प्रिये ! क्या भूल गयीं ? अपने अनिष्टकारीका अनिष्ट स्वप्नमें भी नहीं सोचना चाहिए।"

"अगले साल वह मैट्रिककी परीक्षा में बनारससे बैठेगी—यह ख्याल आते ही उसका चेहरा खुशीसे खिल उठता, परन्तु परीक्षाकी फीस २६) उसकी गरीब विधवा मां कहांसे लायेगी—यह विचार आते ही वह विह्वल हो उठती। वह सोचती—"यदि मैट्रिक पास कर लिया तो अवश्य ही मेरी शादी किसी शहरमें होगी और मैं अपने 'उनके' साथ ज़रूर हाथमें हाथ मिलाकर घूमूँगी। मैट्रिक पास कर लेनेपर मेरी तरफ कोई उँगली भी नहीं उठा सकता। हां, वे बाबू भी कितने अच्छे होते हैं। अपनी स्त्रियोंको प्राणोंसे अधिक चाहते हैं। कैसी सुन्दर तितलियोंसी उनकी स्त्रियां लगती हैं। हमारे गांवमें देखो—जमींदार बाबूके छुटकऊ पढ़े-लिखे भी हैं, फिर भी अपनी फूल-सी स्त्रीको बात-बातमें झिड़क देते हैं और कभी-कभी तो उसे डण्डोंसे मार भी बैठते हैं। शहरके बाबुओंको देखो—अपनी स्त्रियोंसे कैसे मुस्करा-मुस्कराकर बातें करते हैं। तभी तो उनका गार्हस्थ-जीवन इतना सुन्दर और मधुर है। छुटकऊ तो अपनी स्त्रीकी मौजूदगीमें भी गांव-अनगांवकी लड़कियोंको बुरी नज़रसे देखते-फिरते हैं; पर यह बात शहरी बाबुओंमें नहीं। उस रोज़ जब मैं मामाके घरकी छतसे कमला और सरलाके साथ, सड़कपर जाते हुए एक बाबू और उनकी स्त्रीकी ओर देख रही थी तो कमला बेवकूफीसे सरलाकी ओर कुछ इशाराकर ज़ोर-ज़ोरसे हँसने लगी थी। बाबूने ऊपर एक बार अवश्य देखा था, परन्तु फिर गर्दन नीची कर ली थी; यद्यपि उनकी स्त्रीने हमलोगोंको कई बार सिर ऊपर उठा-उठाकर

देखा, पर बाबूने फिर एक बार भी नहीं। सचमुच उस स्त्रीके बड़े भाग्य हैं जिसका पति एक बाबू है। बाबू वास्तवमें देवता होता है। गाँवका शरीफ़से शरीफ़ आदमी भी बाबूके बराबर नहीं हो सकता। बाबूके साथ रहनेमें कितना आनन्द है! दुनियाकी सारी न्यामतें बाबूकी एक मनमोहिनी मुस्कानमें हैं। क्या मेरी भी तक़दीर इतनी अच्छी है कि मैं भी किसी बाबूसे ब्याही जाऊँ ? यह अवश्य हो सकता है, यदि मैं किसी तरह मैट्रिक पास करलूँ—पर हाँ, मेरी विधवा मा इतने रुपए फीस तथा सफर-खर्चके लिए कहाँसे लाएगी ? 'गाँववाले तो दुश्मन हो ही रहे हैं। इतनी सयानी लड़की घरमें बिठा रखी है—हमें तो इसका पढ़ना-लिखना नहीं भाता—पढ़कर क्या इसे मुंशी होना है ?'—आदि-आदि कितने ही ताने गाँवकी स्त्रियोंके प्यारी माको रोज सुननेको मिलते हैं। बेचारीने आभूषण बेच-बेचकर तो अबतक इतना पढ़ाया। अब केवल चाँदीके छड़े और रह गये हैं। ज्यादासे ज्यादा २५) में बिक जाएँगे और क्या ?'

लीला यों सोच रही थी कि बाहरसे मा ने आवाज़ दी—"बेटी! दरवाज़ा खोलो।"

लीला दौड़ती हुई गयी और दरवाजा खोलते हुए बोली—"मा नहा आयी गङ्गा ? गङ्गामें बाढ़ तो नहीं आयी ?"

"बेटी कुछ न पूछो—बड़े ज़ोरकी बाढ़ आयी—किनारे कट गये—पेड़ उखड़ गए। आदमियोंकी जानपर जो आफ़त है सो तो है ही। हाँ बेटी, लेकिन शहरके बाबुओंके आजानेसे

कितने ही आदमियों के प्राण बच गए। चना चबेना भी वे ही लोग बाँट रहे हैं।"

"मा ! बाबू सचमुच देवता होते हैं।"

"क्यों नहीं बेटी ! आखिर पढ़े-लिखे जो हैं।"

"तो फिर मा ! मेरे इम्तिहानके बारेमें क्या सोचा ?"

"बेटी ! मैं फीसका बन्दोबस्त करूँगी। कमसे कम ५०) में तेरा काम चल जायगा। ३६) मेरे पास हैं १४) या १६) छड़े गिरवी रखकर ला दूँगी, चिन्ता किस बात की ?"

लीला मा की यह बात सुनकर फूल उठी और बोली—"मा ! छड़ोंको गाँववाला तो कोई गिरवी रखनेका नहीं।"

"यह तो तू ठीक कहती है बेटी ! यहाँ तो अपने दुश्मन ही हैं। तू कोई तरकीब सोच। तू तो पढ़ी-लिखी है।"

"मा ! गुस्सा न हो, तो एक बात बताऊँ ?"

"बता, मैं तुम जैसी सुन्दर और पढ़ी-लिखी बिटियासे भला क्यों गुस्सा होने लगी ? मेरा लाल तो तू ही है।"

"तो सुनो मा ! इन बाबूसे जो अपने घरके सामने रहते हैं, रुपए क्यों न माँगे जायँ। छड़े दो-तीन महीनेमें हम इनसे छुड़ा लेंगी। नये आये हैं—बाबू हैं—दयावान हैं। हम लोगोंसे गाँव वालोंकी तरह ये क्यों जलेंगे !"

"बेटी मुझसे तो बाबूके आगे बोला भी नहीं जायेगा। मैं बेपढ़ी गँवार जो ठहरी ! यदि तू उनसे बात कर सके तो आज

शामको चल; पर हां, यदि कहीं गांव वाले हम लोगोंको उनके यहां देख लेंगे, तो बड़ी बेइज्ज़ती होगी।"

"मा इसके लिये मैं क्या कर सकती हूँ ? गांववाले तो अपनों से ही जलना जानते हैं। गुलामोंसे इसके अतिरिक्त और क्या आशा की जा सकती है ? गांववाले न तो मदद करेंगे और न किसीको करने देंगे। मा ! हमें ऐसे गांववालोंकी परवाह नहीं है।"

"अच्छा तो आज शामको चलना। छड़े भी सन्दूकसे निकाल रखना।

"बहुत अच्छा मा"

२

किशोर दिया जलनेपर घरमें एक वृद्धाके साथ एक तरुणीको एकाएक आया हुआ देख किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा हो गया। तरुणी भी ऐसी-वैसी हो तब न ? सौन्दर्यकी साकार प्रतिमा हीं प्रतीत हो रही थी। यौवन उसमें बार-बार, अंगड़ाई ले रहा था। उसके गुलाबी गाल, अधखिली कलीके समान चिबुक, रक्त कमलके समान लाल-लाल, पतले-पतले अधर, मृणालके समान-मनोमुग्ध-कारी ग्रीवा, सर्पिणीके समान फुँकारती हुई वेणी आदिको देखकर कौन ठगा-सा नहीं रह जाता ? उसके नयन-प्यालेमें बरबस मादकताका रस छलका पड़ता था। यह तो सब था ही, लेकिन इन सबके अतिरिक्त उसका मुखमण्डल एक विचित्र प्रकारके तेज-

से देदीप्यमान था। उसका तन खद्दरके साधारण किन्तु स्वच्छ वस्त्रोंसे सुसज्जित था।

हाँ, पहले तो किशोर इन दोनोंके आगमनसे अवश्य घबरा गया। किन्तु शीघ्र सँभलकर बोला—"कहिये माजी! कैसे कष्ट किया ?"

माजी चुप थीं। लीलाने बोलनेका बहुत प्रयत्न किया, पर मुँह न खुल सका। आज उसे मालूम हुआ कि अपने देवता बाबुओंसे बोलना कितना कठिन है।

दोनोंको लजाते देख किशोरने फिर कहा—"कहिये आप लोगोंने यहाँ आनेकी कैसे तकलीफ की ? मेरे लायक जो काम हो बतलाइये।"

इस बार लीलाने बड़ी हिम्मतकर कहना शुरू किया—"बाबूजी ⋯ बाबूजी⋯⋯ हम .. लोग⋯।" बस फिर वह कुछ न बोल सकीं। किशोरको बड़ी हँसी आयी; किन्तु हँसना अशिष्टता समझकर उसने उन दोनोंके अधिक समीप आकर कहा—'आप घबराइये मत, यह आप लोगोंका ही घर है। कहिये, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

अब तो लीलाको साहस हुआ—वह बोली—"बाबू जी! यह हमारी मा हैं। हमारे पिताजीको मरे कई साल हो गये। इस गाँवमें पढ़ी-लिखी लड़कियाँ बहुत बुरी नज़रसे देखी जाती हैं। मैं अब तक पढ़ती रही, अपर मिडिल कर लिया है। इस साल मैट्रिकको परीक्षा देना चाहती हूँ।"

"ओह, 'गुड' ज़रूर दें। मुझे आप लोगोंसे मिलकर बड़ी खुशी हुयी।"

"पर दूँ तो कैसे ? गाँववाले देने दें तब न ?"

"इसमें गाँववाले क्या कर लेंगे ? बकते हैं तो बकते रहें।"

"यह तो ठीक है, बाबूजी ! मेरी माँ यानी हमलोग बहुत गरीब हैं। परीक्षाके लिये कम-से-कम ५०) तो चाहिये ही। २६) तो फ़ीसमें लग जायेंगे। ३६) मेरी मा के पास हैं, १४) में मैं यह छड़े गिरवी रखना चाहती हूँ। गाँवमें तो इन्हें कोई गिरवी न रखेगा। कारण गाँववाले नहीं चाहते कि मैं आगे पढ़ूँ। बाबूजी ! क्या आप १४) में मेरे छड़े गिरवी रख लेंगे ?"

किशोर ये शब्द सुनते ही एक दम रो पड़ा। बोला—"हाय भारत ! तू कबतक इस दशामें रहेगा ? हमारी मा-बहनें कब तक इस तरह दुखी रहेंगी ? गुलामों ! तुम कब चेतोगे ?"

किशोरके उपर्युक्त शब्द लीलाकी मा न समझ सकी। वह समझी शायद बाबू रुपयेकी बात सुनकर हमलोगोंको डाँट रहा है। वह बोली—"चलो, लीला ! बाबू गुस्सा होते हैं।"

"नहीं, मा ठहरो"—लीलाने धीरेसे कहा।

किशोर चौंककर बोला—"मा ! नहीं, मैं आप लोगोंसे गुस्सा नहीं होता, आप गलत समझ गयीं। आप तो मेरी मा हैं। मुझे तो आप अपना ही बेटा समझिये। मैं हर तरहसे आपकी मदद करनेको तैयार हूँ। यह लीजिये जितने रुपए आपको चाहिए, ले लीजिए"—कहते हुए किशोरने बहुतसे दस-दस और पाँच-पाँच रुपयेके नोट लीलाकी मा के आगे बढ़ा दिये।

बाबूजी ! हम लोगोंपरआपने वास्तव में बड़ी कृपा की। एतदर्थ हम आपको धन्यवाद देती हैं ; परन्तु हमें सिर्फ १४) ही चाहिये। हमें आप १४) दे दीजिये और यह छड़े आप रख लीजिये"—लीलाने सब छड़े पोटलीमेंसे निकालकर किशोरके आगे रखते हुए कहा।

"लीला ! मुझे माफ करना। मैं पहली बारमें ही तुमसे इतना खुलकर बोल रहा हूँ। तुम पागल मत बनो। तुम्हारे छड़ोंकी बातसे मुझे असह्य बेदना हो रही है। मैं शर्मसे गड़ा-सा जाता हूँ। ये लो, ये दस-दसके दो नोट हैं। अपने छड़े अपने साथ ले जाओ"—किशोरने दुखी होकर कहा।

लीला अपनी माकी ओर ताकने लगी। माने कहा—"यह नहीं होगा। यदि आप छड़े नहीं लेंगे तो हम रुपये नहीं लेंगी। चलो बेटी ! और कहीं चलकर देखें। न जाने भाग्यमें क्या बदा है !"

किशोरने कहा—"मा आप दुःखी न हो।"

लीलाने किशोरसे धीरेसे कहा—"बाबूजी, आप छड़े रख लीजिये न ?"

किशोरने पूछा—"क्या यह तुम्हारी आज्ञा है ?"

लीला केवल मुस्कुरा दी।

## ३

आज किशोरकी खुशीका ठिकाना न रहा। वह अखबार देखते ही उछल पड़ा—लीलाका नाम प्रथम श्रेणीमें देखा। वह दौड़ा

हुआ लीलाके घर गया। लीला स्नानकर अपने बाल सुखा रही थी। किशोरको देखते ही लजाकर उठ बैठी। किशोरने पास जाकर कहा—"लीला! आज मुझे क्या खिलाओगी यदि मैं तुम्हें एक खुशख़बरी सुनाऊँ ?"

"मैं आपको"—लीलाने मुस्कुराते हुए कहा—"उस रोज़ जैसी बेसनकी पकौड़ियाँ खिलाऊँगी। स्वीकार है न ?"

"लीला! लीला! तुम पास हो गयीं"—किशोर खुशीमें चिल्ला पड़ा।

"हैं! मैं पास हो गयी सच ? मेरे पर्चे तो अधिक अच्छे नहीं हुए थे।"

"सच लीला! तुम पास हो गयीं और प्रथम श्रेणीमें, यह देखो अखबार। कांग्रेचूलेशंस !"

"थैंक्स"—अख़बार देखते समय लीलाके मुँहसे निकल पड़ा।

इतने ही में लीलाकी मा एक तश्तरीमें चार लड्डू रखकर लायी और किशोरकी ओर बढ़ाकर बोली—"लो भैया! पास होने की मिठाई !"

किशोरने आगे बढ़कर तश्तरी अपने हाथमें ले ली और खुश होते हुए लड्डूका एक टुकड़ा तोड़कर मुँहमें दे दिया। फिर उसने हँसते-हँसते चारों लड्डू ख़त्म कर दिए।

शामको किशोरने परीक्षामें सफल होनेके उपलक्षमें, लीलाको चमचम चमकता हुआ सोनेका एक हार पुरस्कार-स्वरूप दिया। लीलाने बहुत ना-नुकर किया, पर किशोरने वह हार बरबस उसे पहना दिया।

दूसरे दिन शामको लीलाने किशोरको भोजनके लिए बुलाया। अपने हाथसे छोटी छोटी पूड़ियाँ बनायीं। यों तो सभी व्यंजन बढ़िया थे, परन्तु बताशेका रायता और रूमाली जवा बहुत ही अच्छे थे।

लीला और किशोरकी घनिष्ठता दिन-पर-दिन बढ़ती गयी। किशोरने उसको सब प्रकारकी सहायता पहुंचाई। आजकल इस स्वार्थी संसारमें कोई किसीकी मदद नहीं करता। यदि कोई करता भी है तो अपना स्वार्थ पहले देख लेता है। इस सम्बन्धमें किशोरकी सहायता वास्तवमें श्लाघ्य थी। लीलाके प्रति किशोरका वही भाव था जो एक शिशुका सुन्दर फूलके प्रति होता है।

दूसरे दिन बातों ही बातोंमें लीलाकी माके मुँहसे निकल गया—"बेटा किशोर! मैं अब बहुत बुड्ढी हो गयी हूँ। इस ज़िन्दगीका क्या ठिकाना? मैं तो अब कगार पर की झाड़ी हो रही हूँ। अब एक लहर और कि धड़ाम पानीमें। बेटा! तुम भी अबतक अविवाहित हो, क्यों न मैं अपनी आँखोंसे तुम्हारी और लीलाकी शादी देख लूँ। तुम लोगोंकी घनिष्ठता मुझे ऐसा कहनेको बाध्य करती है।"

लीला ये सब बातें छिपकर सुन रही थी। माका यह प्रस्ताव देखकर वह प्रसन्नतासे नाच उठी।

"मा"—किशोरने कहा—'यह ठीक है। मैं लीलाको अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यार करता हूँ। न मालूम कैसे लोग अब यह भी जान गये हैं कि मैं आप लोगोंकी सहायता भी करता हूँ,

यद्यपि मैं यह नहीं चाहता था कि दुनियावाले इस बातको जानें। मा! यदि मैं आज लीलाके साथ ब्याह कर लूँ तो दुनियाकी कोई भी गरीब लड़की किसी अमीरसे अपनी पढ़ाईके लिए रुपये माँगनेका साहस न कर सकेगी। मा! इसमें मैं दोषी ठहराया जाऊँगा—फिर कोई किसीकी निःस्वार्थ सेवापर विश्वास न करेगा। लोग कहेंगे—किशोरने धनका लालच देकर एक गरीब लड़कीको फँसा लिया। मैं अपने प्रियजनोंकी ऐसी बेइज्जती न सह सकूँगा। हाँ, यह ख्याल भी आपका ग़लत नहीं है कि मैं लीलाको अपने प्राणोंसे भी अधिक चाहता हूँ और यही कारण है कि मैं आजीवन अविवाहित रहूँगा। काश, दुनिया हमलोगोंके दिलोंकी तहतक पहुँच सकती!"

एक साल बाद—

मिस लीला बी० ए० बी० टी०, इंस्पेक्ट्रेस आफ स्कूल्स बदलकर लखनऊ आ गयी हैं। जनश्रुति है कि बचपनमें मिस साहिबाकी किसी तपस्वीसे मित्रता थी। मिस साहिबा उसीसे विवाह करना चाहती थीं, किन्तु किसी वजहसे वे उस कार्यमें असफल रहीं—तभीसे उनका जीवन बड़ा ही त्यागमय हो गया है।

एक दिन गोमती नदीके किनारे मिस साहिबा अपना कुत्ता लिए टहल रहीथीं। नदी उन दिनों बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। अन्धेरा हो चला था। मिस साहिबा कुछ भयभीत-सी घर पहुँचनेकी जल्दीमें थीं कि अन्धेरेमें दरियाके किनारे उन्होंने 'लीला, लीला' की आवाज़ सुनी। अपना नाम सुनकर वे चौंक पड़ीं।

"हैं ! यह आवाज़ किसकी है ? भगवान् यह तो परिचित स्वर है, तो फिर क्या यह किशोर है ? नहीं, नहीं, किशोर कहाँसे आया ? खैर देखूँ।"

मिस साहिबा अन्धेरेमें जिधरसे आवाज़ आयी थी, उधर ही दौड़ पड़ीं। कुत्ता भी साथ दौड़ा। आगे जाकर उन्होंने देखा—एक नवयुवक एक पोटली लिये हुए पागलकी तरह कुछ बक रहा है।

लीलाने पहचाना—किशोर था, वह रो पड़ी, उसे लिपट जानेको दौड़ी, पर यह क्या ? किशोर उसे देखते ही गोमतीके अथाह जलकी ओर भागा। हैं ! तो क्या वह आत्महत्या करना चाहता है ? लीलाको शक हुआ—शायद मुझे धोखा हो रहा है। वह किशोर नहीं है। उसने दौड़कर पोटली उठायी जिसे छोड़कर भागा था। देखा—वे ही छड़े थे।

फिर तो लीला ताबड़तोड़ दौड़ी। किशोर पानीसे दो कदमकी दूरीपर मुश्किलसे रहा होगा कि लीलाने उसे मज़बूतीसे पकड़ लिया और कहा—"बाबूजी ! मुझे भूल गए। मेरे देवता ! मैं अबतक तुम्हारी खोजमें थी। तुम्हारे ही नामकी माला जपती रही। मैं तुम्हारे आदर्श पथमें रोड़ा बनकर न आयी तुम्हारे आदर्शको मैंने भी अपनाया—यद्यपि तुम मेरी यादमें घुलते रहे, परन्तु हे मेरे आदर्श पुरुषोत्तम, तुमने अपना सिर हमेशा ऊँचा रखा।"

"लीला ! मेरी लीला ! तुम अब तक अविवाहित हो। आश्चर्य लीला ! लेकिन मैं तो अब भिखारी हूँ। मैंने सब कुछ

त्याग दिया। अब मेरी केवल दो ही निधियाँ हैं—एक तुम्हारी स्मृति और दूसरी तुम्हारे छड़े, जिनके रखनेकी तुमने कभी आज्ञा दी थी।"

किशोर उछल पड़ा, जब उसने सुना कि लीला बी० ए० बी० टी० होकर इंस्पेक्ट्रेस आफ स्कूल्स हो गयी है।

उसने आगे बढ़कर उसके रक्तिम कपोलको चूम लिया।

वह लीलाके इतिहासमें किशोरका प्रथम चुम्बन था।

ज़रा देर बाद किशोर बोला—"मेरी लीला! आज तुमने मुझे आत्महत्या करनेसे रोका। तुम वास्तवमें स्वर्गकी देवी हो। मेरी लीला! तुमने दुनियाको दिखा दिया कि प्रेम और वासनामें कितना अन्तर है!"

लीलाने मुस्कुराते हुए कहा—"यह मेरे आदर्श देवताका पढ़ाया हुआ पाठ है।"

"लीला! आज मैंने तुममें सब कुछ पा लिया। आज मेरी तपस्या पूर्ण हुई। अब दुनियाका बच्चा-बच्चा निःस्वार्थ सेवापर विश्वास करेगा"—किशोरने लीलाके बालोंपर हाथ फेरते हुए कहा।

"अब दुनियाकी कोई भी गरीब लड़की किसी अमीरसे अपनी पढ़ाईके लिये रुपये माँगनेका साहस कर सकेगी।"—"लीलाने मुस्कुरातेहुए, किशोरके कानमें शिशु-सारल्यके साथ कहा।

दोनों खिलखिला पड़े। उधर आसमानमें कुमुदिनी-बल्लभ भी मुस्कुरा उठे।

---

# सनबो

मैं अस्तबलमें घूम-घूमकर अपने घोड़ोंको अपने हाथोंसे लूसन खिला रहा था। यों तो मैं अपने सभी घोड़ोंको एकसा प्यार करता हूँ; किन्तु 'सनबो' पर मेरा स्नेह औरोंसे अधिक है। सनबो ही मेरा पुराना साथी है। इसने मेरे भले और बुरे सभी दिन देखें हैं। बुरीसे बुरी हालतमें भी सनबोका दूध कभी बन्द न हुआ। सनबो सात सेर गायका दूध रोज पीता था। मैं ग्वालेसे अपने सामने दूध दुहवाता था! मेरी आंखोंके सामने ही सईस दूधकी बाल्टी सनबोके सामने रखता और वह अपनी गर्दन दो-बार झुकाकर दूध साफ़ कर जाता। अपने सामने रोज़ चार घण्टे सनबोकी मालिश करवाता था। रेसके घोड़ोंके लिये मालिश जई और चोकरसे अधिक आवश्यक है। सनबो 'इङ्गलिश ब्रीड' था। मैंने स्वयं मण्डी जाकर आठ हज़ारमें उसे ख़रीदा था। उन दिनों सनबो बच्चा था। लोगोंको स्वप्नमें भी यह ख़्याल न था कि सनबो कभी बड़ी मीटिङ्गमें लार्ड विलिङ्गडन के घोड़ेको मारकर चम-चम चमकता हुआ 'विलिङ्गडन कप' जीतेगा। उस रोजसे सनबोका एक-एक बाल लोगोंकी नज़रोंमें सोनेका हो गया। मैं उस दिनसे मालमाल हो गया। मेरी खुशीका ठिकाना न रहा। मैं तभीसे अन्य घोड़ोंकी अपेक्षा सनबोको हरेक चीज़ अधिक देता हूँ।

आज यद्यपि सनबो वह सनबो नहीं, जो दस साल पहले था—अब तो वह वृद्ध हो गया है, तथापि वृद्ध होना कोई पाप नहीं। दुनिया अपना मतलब देखती है। यक़ीन मानिये अगर दुनियाका उल्लू एक जवानकी अपेक्षा एक बूढ़ेसे अधिक सीधा हो, तो वह जवान और उसकी जवानीको ताक़पर बिठा देगी। हाथ कंगनको आरसी क्या ? कितने ही ऐसे बाप हैं जिन्होंने अपनी सुन्दरसे सुन्दर, योग्य और विदुषी कन्याएँ युवकोंका 'बायकाट' कर बुड्ढोंसे ब्याह दीं। उन बूढ़े खबीसोंसे उनका उल्लू सीधा हुआ—वे मालामाल हो गए। बुढ़ापेने जवानीपर खिलखिलाकर विजय पायी। इसके अतिरिक्त दुनियाने सदैव ही वृद्धावस्थाका तिरस्कार किया। यद्यपि यह सब जानते हैं कि उस रास्तेसे एक दिन गुज़रना है फिर भी परवाह कौन करता है ? जब सिर पड़ती है तो हाय-तोबा मचती है। अस्तु।

यों तो मेरे बहुतसे दोस्तोंने कहा कि क्या झमेला पाले हो ! अब सनबोका ज़माना चला गया, भारी घोड़ा है, दो घोड़ोंके बराबर खाता है - बेचकर अलग करो। लेकिन मैं उन हृदय-हीनोंको कैसे समझाता कि सनबो मेरा प्राण है। यह मेरे दुःख-सुखका साथी है। इसे रेसवाले तो ख़रीदनेसे रहे, फिर क्या मैं इसे ताँगेमें जोते जानेके लिये दे दूँ। मेरा फूलसा नाज़ोंका पला सनबो ताँगा खींचे। छिः, यह खयाल आते ही मैं आपेसे बाहर हो जाता। कभी उनसे बिगड़ जाता और कभी चुप रह-कर 'एक चुप सौकी हरावे' वाली कहावत चरितार्थ करता।

गिरफ्तार होनेके पहले मैंने राजेन्द्रको घण्टों तोतेकी तरह पढ़ाया और सनबोको सब प्रकारसे सुखी रखनेको कहा। यहाँ तक कह दिया कि सनबोको अपना सगा भाई ही समझना और उसकी ख़िदमतमें किसी बातकी कमी न करना। जेल जानेसे पहले मैंने अपने सनबोका सिर अपनी बग़लमें ले लिया और कितने ही चुम्बन उसपर बरसा डाले।

इधर मैं घोड़ेसे अन्तिम विदाई ले रहा था और उधर पुलिस-इन्सपेक्टर अस्तबलके बाहर मेरी बाट जोह रहा था। यों तो बहुतसे मजिस्ट्रेटों, बैरिस्टरों और पुलिस अफसरोंको मैंने रेसमें अपने घोड़ोंपर कितने ही रुपये जितवाए थे, किन्तु इस समय उनकी सहायता होते हुए भी मुझे उससे लाभ उठाना स्वीकार न था। वे मुझे गिरफ्तार तो कर रहे थे, परन्तु उनका दिल बैठा जाता था। कहते—"भाई साहब! माफ़ी माँग लो। क्या बिगड़ जायगा? आपके पास रेसके इतने अच्छे-अच्छे घोड़े हैं। आपकी गैरहाज़िरी में इन घोड़ोंकी देखभाल कौन करेगा? यह काम आपके भतीजेके बूतेका नहीं।

मैं केवल हँस देता।

समय अधिक न था। सब-इंस्पेक्टर नया बदलकर आया था। वह रेस और रेसके घोड़ोंसे अनभिज्ञ था। देर होते देख वह तमतमाया हुआ अन्दर चला आया। सिपाहियोंने मुझे घेर लिया। शायद वे मुझे अब एक रेसियरसे क्रान्तिकारी समझने लगे थे।

इंस्पेक्टर बोला—"चलिये साहब ! देर हो रही है।"

मैंने कहा—"अच्छा जनाब, अभी चला"

बस फिर मैं आगे बढ़ा। सनबो जोर-जोरसे हिनहिनाने लगा। उसकी हिनहिनाहटमें मुझे कातरता तथा वेदनाका आभास मिला। मुझे लाल पगड़ियोंसे घिरा देखकर न जाने वह क्या समझ रहा था। वह अस्तबलमें चक्कर काटने लगा। मैं उसकी बेचैनी और वेदनाका प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा था। मैं सनबोको उसी हालतमें छोड़कर अपने अन्य घोड़ोंसे अन्तिम-बार मिलने गया, किन्तु वे कम्बख्त सब दाना खानेमें इतने व्यस्त थे कि उन्हें पता ही न चला कि कौन कब उनके पास आया और गया। मैं फिर 'सनबो' को एक नज़र देखने चला गया।

सनबो अब तक टकटकी लगाए, अपनी गर्दन ऊँची उठाए, बराबर मेरी गतिविधिका निरीक्षण कर रहा था। मुझे अपनी ओर आते देख एक बार फिर उसका चेहरा खुशीसे खिल उठा। वह हिनहिनाया, मैंने उसके सिरपर हाथ रखा और कहा—"बेटा सनबो, मैं अब जेल जाता हूँ। तुम्हारा भाई राजेन्द्र सब तरहसे तुम्हारी ख़िदमत करेगा।"

मैं चलनेकोहुआ—सनबोने मेरे कोटकी आस्तीन अपने दाँतोंसे दबा ली।

मैंने कहा—"छोड़ दो बेटा ! ईश्वरने चाहा तो जल्द ही आऊँगा।"

बस फिर सिपाहियोंके साथ मैं चल दिया। फाटकपर पहुँचकर मैंने फिर एक बार घूमकर पीछे देखा। देखा, सनबो निर्निमेष दृष्टिसे मेरी ओर ताक रहा है। मेरा चेहरा देखते ही वह फिर एक बार बड़े ज़ोरसे हिनहिना उठा। मेरे मनमें आया कि एक बार फिर लौट चलूँ और सनबो से मिलूं; परन्तु पुलिस का रुख कुछ दूसरा ही हो चला था। अतः मन मारकर मैं चुपचाप आगे बढ़ता गया।

३

दुनियामें खुशियोंकी भी कितनी ही जातियाँ हैं—दौलतकी खुशी, नवयौवना स्त्रीकी खुशी, नौकरीकी खुशी, नेता बन जाने की खुशी, बच्चेकी खुशी, बाग़ लगवानेकी खुशी, पदवीकी खुशी, तन्दुरुस्तीकी खुशी, आए-गएकी खुशी, शत्रुनाशकी खुशी, रेसमें जितनेकी खुशी, किसीको फाँस. लेनेकी खुशी, किसीकी कविता अपने नाम छपवानेकी खुशी, तीतरबाज़ीकी खुशी, बटेरबाज़ीकी खुशी और भी कई कई बाजियोंकी खुशी आदि।

दुनियाकी तमाम खुशियाँ मैंने दूसरोंके लिए छोड़ रखी हैं। मुझे आज यदि कोई खुशी है तो अपने प्यारे सनबोसे मिलने की। श्रीमतीजी तो अब भी जेलमें ही हैं। मेरे दो साल आज पूरे हो गए और मैं बाक़ायदा जेलके फाटक से बाहर कर दिया गया। मैं बरेली सेन्ट्रल जेलसे ताँगाकर सीधा स्टेशन पहुँचा।

शामको चार बजे हमारी गाड़ी चारबाग़ स्टेशनपर रुकी। मैं खुशीसे उछल पड़ा। सोचने लगा—'आज ठीक सवा दो वर्ष बाद मैं अपने प्यारे सनबोको देखूँगा। सनबो भी मुझे एका-एक आया देखकर आश्चर्य करेगा। मुझे देखकर वह कितनी खुशीसे हिनहिनाकर दौड़ेगा। सनबोको मैं चिपटालूंगा और पूछूँगा कि सनबो कभी हमारी भी याद की थी। शायनिङ्ग, साइप्रस, ओह जाने भी दो, ऐसे नालायक, बेमुरव्वत हैं कि मेरे जेल जाते समय भी दाना छोड़कर मेरे प्रति अपनी कुछ सहानु-भूति न दिखला सके। न जाने, राजेन्द्रने सनबोको कैसे रखा होगा? मैं सब पूछ लूँगा। सनबो मुझे सब बता देगा। पर हाँ, सनबोके लिए क्या चीज़ ले चलूँ। ठीक, याद आया—रास्तेमें घोड़ा-अस्पताल पड़ता ही है। डाक्टर दोस्त हैं। लूसन उन्होंने तमाम लगा रखा है। बस थोड़ा-सा लूसन ही अपने सनबोके लिए ले चलूंगा—कितने शौक़से खाता है लूसन मेरा सनबो।"

मैं आगे बढ़ा। ताँगेवालेको आवाज़ दी। कितने ही तांगे आए, पर मैंने उन्हें पसन्द न किया। मैं ऐसा तेज ताँगा चाहता था जो मुझे बातकी बातमें दिलकुशा पहुँचाता। मैं फिर विचार-प्रवाहमें बहने लगा।

थोड़ी देर बाद मेरे सामने एक तेज ताँगा आता हुआ दिखाई दिया। मैंने उधरको ही मुँह करके आवाज़ दी—"ओ मियाँ ताँगेवाले!"

"खाली नहीं है हुजूर !" ताँगेवालेने दूसरी ओर ताँगा घुमाते हुए चिल्लाकर कहा। लेकिन यह क्या ? घोड़ा इतने ज़ोरसे क्यों हिनहिनाने लगा ! अरे वह तो ताँगा खींचे मेरी ही ओर भागा चला आ रहा है। हाँ ! वह अपने मालिकके आज्ञानुसार उधर क्यों नहीं मुड़ा ? अरे, उसका मालिक भी बड़ा बेरहम है। ऐसे अच्छे घोड़ेपर ताबड़तोड़ कोड़े बरसा रहा है !

मैं इतना सोच ही पाया था कि ताँगा बिलकुल मेरे समीप आ गया। मैं भयभीत हो उठा। मैंने सोचा—यदि इसी तरह खड़ा रहा तो यह बदमाश बिगड़ा हुआ घोड़ा मेरे ऊपर चढ़ आयेगा और ताँगे तथा टापोंसे मेरा कचूमर ही निकाल डालेगा, किन्तु नहीं जब मैं घोड़ेसे लगभग दस क़दम रह गया तो उसने अपनी चाल धीमी कर दी। अपने मालिकसे कोड़ा मारनेका बदला तो उसने उसे बीचमें ही गिराकर ले लिया था।

मुझे आश्चर्य हुआ। घोड़ा आगे बढ़ा। मैंने उसे ध्यानसे देखा—मैं रो पड़ा—आह ! सनबो था !! घोड़ेने आते ही अपना मुँह मेरे मुँहसे लगा दिया।

मैं चिल्ला उठा—"मेरे सनबो ! तुम्हारी यह हालत किसने की। मैं उसे मार डालूँगा। मैं उसे जीवित ही जला दूँगा। क्या उस कमीने राजेन्द्रने तुम्हारी यह हालत की ? उसने समझा कि मैं मर गया। सनबो ! मेरा बेटा ! मैं यह क्या देख रहा हूँ। क्या इन आँखोंसे यह भी देखना बदा था।"

मैंने आगे बढ़कर उसका मुख चूमा और उसके तंग खोल दिए। सनबो मारे खुशीके उछल रहा था। इस समय उसकी हिनहिनाहट मेरे कानोंमें अमृत-वर्षासी कर रही थी।

मैंने सनबोको थपथपाते हुए कहा—"सनबो! तुम बहुत ही कमजोर हो गए! आह! तुम्हारी पीठपर कितने ही घातक घाव हो गए हैं—फिर भी यह ताँगेवाला तुम्हें जोते ही जा रहा है!"

सनबोने हिनहिनाकर अपना मुँह मेरे कन्धेपर रख लिया।

मैंने कहा "सनबो, इतना हाँफो मत। मैं तुम्हें फिरसे तगड़ा बना लूँगा। खूब दूध पिलाऊँगा। लूसनकी भी कमी न होगी।"

सनबो फिर हिनहिनाया और ज़ोर-ज़ोरसे हाँफते-हाँफते अपना मुँह मेरे कानके पास लाया।

मैंने फिर कहा—"सनबो! क्या कहते हो? मैं समझ गया। मैं राजेन्द्रको बहुत कड़ी सजा दूँगा। उसने तुम्हें दाना भी कम दिया होगा। कसोलियन तो शायद दी भी न हो। अब चिन्ता मत करो।"

"हैं! यह क्या!! सनबो तुम गिरे जा रहे हो। हैं! गिर पड़े! अरे लोगो, दौड़ो!! मेरा बच्चा मरा जा रहा है!!! तुम देख रहे हो—तुम्हें शर्म भी नहीं आती? ऐ सनबो! तुम दम तोड़ रहे हो—ठहरो मैं अभी पानी लाता हूँ—मेरे बच्चे! तुम मुझसे यों अलग मत हो।"

मैं दौड़ा हुआ गया। एक लोटा पानी लाया—सनबोके मुँह में डाला। उसने आँखें खोल दीं। मैंने उसका सिर अपनी गोदमें ले लिया। देखा—उसकी बड़ी-बड़ी आँखोंसे आँसू बह रहे हैं। मैंने अपना रूमाल निकाला और उसके गरम-गरम आँसू पोंछ डाले। जरा देर बाद उसके नेत्र फिर सजल हो गए। वह अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे मेरी ओर देखने लगा।

मेरे आँसू टपटप सनबोके मुँहपर गिर रहे थे।

थोड़ी देर बाद उसने दो हिचकियाँ लीं और फिर वह किसी वेदनासे छटपटा उठा। उसकी आँखें मूँद गयीं—मैं घबरा उठा और धीरे-धीरे उसका सिर सहलाने लगा। उसने एकबार फिर आंखें खोलीं—मुझे देखा और फिर ?

और फिर उसने अपनी अश्रुपूर्ण आँखें सदाके लिये बंद कर लीं।

---

# अन्धकार

“पानी। श्यामा, पानी, पानी।”—रोगीने कराहते हुए कहा।

श्यामाने दौड़कर अपने पतिको पानी दिया।

पानी पीकर श्यामाके पति रामदेवको कुछ शान्ति-सी मालूम हुई। वे बोले—“श्यामा, कल दीवाली है। मैं समझता था कि मैं दीवाली तक स्वस्थ हो जाऊँगा; किन्तु वैसा न हो सका। श्यामा, मैं तुम्हें अब तक जरा भी सुख न पहुँचा सका। मेरा

जीवन आपत्तियोंके पर्वतोंसे घिरा रहा! मैंने चाहा, तुम्हें आरामसे रखूँ; ईश्वरने उसे नापसन्द किया। जब-जब मैंने तुम्हारे लिये अच्छी साड़ियाँ लानेके लिए रुपये जोड़े, ईश्वरने किसी न किसीको एकाएक बिमार कर दिया और वे रुपये अनिच्छापूर्वक ही मुझे दवाइयोंमें खर्च करने पड़े! विपत्ति ही मेरी चिरसहचरी है। वास्तवमें विधिने तुम्हारे विवाहका विधान मेरे साथ रचकर बड़ी भूल की। काश! तुम किसी धनिक की पत्नी होतीं?"

"आज आपको क्या हो गया जो ऐसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं? बीमारीकी दशामें इतना बोलना हितकर नहीं। मुझे आपके साथ अब तक कोई दुःख नहीं व्यापा। कौन कहता है कि मैं अपने प्राणधनके साथ रहते हुए भी दुखी हूँ? दुःख क्या है, मैं नहीं जानती। यदि दुःखरूपी अजगर अपना मुंह बाये कभी मेरे पास आया भी, तो आपकी अजानु बाहुओंने उसको समूल नष्ट कर दिया। भटकटैयाके फूलोंमें भी मुझे गुलाबके फूल मुस्कराते मिले। प्राणधन, लोगोंकी यह ग़लत धारणा है कि स्त्रियाँ धनपर मरतीं हैं। स्त्रियाँ न तो धनपर मरती हैं, न रूप पर, और न ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओंपर ही।

सच पूछो, तो स्त्रियाँ चाहती हैं—अपने पतिका निष्कपट प्रेम। कहा भी है—

> टूट ठाट घर टपकत खटियौ टूट,
> पियके बाँह उसिसवाँ सुख कै लूट।

और इस सम्बन्धमें मैं बड़ी ही सौभाग्यशालिनी हूँ।"—श्यामाने मुस्कराते हुए कहा।

"श्यामा, यह तुम्हारे हृदयकी विशालता है; परन्तु दुनियावी काम वगैर दुनियाकी बातोंके नहीं चलते। रुपये खर्च करनेकी जगह केवल बातोंसे ही काम नहीं चल सकता। श्यामा, वास्तवमें मैंने सी० आई० डी० की नौकरी छोड़कर तुम्हारे साथ अन्याय किया। मैं भूल बैठा था कि हिन्दीके प्रकाशक तथा सम्पादक इतने अनुदार हैं कि वे लेखकोंके साथ ज्यादती करनेसे भी बाज़ नहीं आते। श्यामा, औरोंको तो जाने दो, कंधेसे कंधा भिड़ाकर चलनेवाले हमारे साहित्यिक बन्धु भी आपसमें एक-दूसरेके प्रति सद्भावनाएँ नहीं रखते। एक दूसरेको कच्चा ही खा जानेके लिए तैयार हैं। मुझे मालूम नहीं था कि सरस्वतीके भक्त भी इतने पतित होंगे—ईर्ष्या, द्वेष और जलनकी भट्टियोंमें ये भी अपने शरीरको होमतें होंगे। हाँ, यह तो बतलाओ, लखनऊसे मेरे कहानी-संग्रहका पुरस्कार आ गया?"

"प्राणेश्वर, आप इतने चिन्तित क्यों होते हैं? दुनियामें आप किस-किसके लिए दुखी होंगे! परसों आप पूँजीपतियोंकी बात लेकर बिगड़ रहे थे और आज अपने प्रिय साहित्यिक बन्धुओंकी बात लेकर अपना खून जला रहे हैं। आपके सम्हालनेसे ये लोग कुछ सम्हल थोड़े ही जायेंगे। जली कटी बातोंका उनपर उलटा ही प्रभाव पड़ेगा।

हाँ, तीन चिट्ठियाँ तो आप मुझसे ही लिखवाकर लखनऊ भेजवा चुके, परन्तु उस भले आदमीने अब तक कोई उत्तर भी नहीं दिया। न मालूम इन लोगों के हृदय भी होता है या नहीं ?"

"तो लखनऊसे रुपये नहीं आए ? अबतक तो तुमने अपने आभूषण बेचकर मेरी दावादारू की, लेकिन अब तो आभूषण भी खत्म हो गये। अब क्या करोगी ? हाँ, क्या सेठ हरनामदासने भी पुस्तक-सपर्पण के रुपये नहीं भेजे ? ओह !. तुम किस प्रकार घरका खर्च चलाती हो। यदि दवा वाला उधार दवा न देता तो शायद मैं अबतक मर गया होता। श्यामा, बतलाओ तो कितने रुपयोंकी दवा मैं अबतक पी चुका ?"

"ईश्वरकी कृपासे घरका सब खर्च चलता ही जाता है। आप दुखी न हों मेरे परमेश्वर !"

"अच्छा आज दूधवाला अभी तक क्यों नहीं आया ? मैं तो भूखा मरा जा रहा हूँ श्यामा !"

"कोई काम लग गया होगा। आता होगा। तबतक मैं अपनी सहेली वीणाके यहाँसे थोड़ा-सा दूध उधार लिये आती हूँ"—कहकर श्यामा गिलास उठाकर चल दी।

२

श्यामाकी पड़ोसिन वीणा एक प्रोफ़ेसरकी पत्नी है। प्रोफ़ेसर साहब तथा वीणा एक नम्बरके कंजूस हैं। दुनियामें कंजूस भी कई

क़िस्मके होते हैं। ये उस दुर्लभ क़िस्मके कंजूस हैं, जिनका उदाहरण दुनियामें शायद एक आध जगह ही कोशिश करनेपर मिल सके। इनके साथ आप लाख भलाई कीजिए, ये उसका बदला बुराईसे ही देंगे। इनके लिए चाहे आप अपना ख़ून ही बहा दें, पर ये आपके लिए अपना पसीना भी देनेको तैयार नहीं। सुनते हैं, प्रोफ़ेसर साहबने अपनी पहली पत्नीको जानबूझकर अपने एक डाक्टर दोस्तसे ज़हर दिलवा दिया था। उसका अपराध केवल यही था कि वह अधिक खाती थी। हाथ रोककर खर्च करना भी उसे न आता था।

श्यामको खाली गिलास लिये देखकर वीणा बोली—"बहन श्यामा! क्या सवेरे-सवेरे खाली बरतन दिखा दिया। ईश्वर ही ख़ैर करे आज। आप उधर ही रहिये। अगर कहीं प्रोफ़ेसर साहबने देख लिया, तो बेकार मुझे डाँटने लगेंगे।"

"बहिन, वीणा! आज ऐसी बातें क्यों करती हो? आखिर आदमीके दिन सदैव एकसे नहीं रहते?"

"अच्छा, तुम चाहती क्या हो?"

"बहिन मुझे यह कहते दुःख होता है कि मैं आपको आज एक गिलास दूधके लिए कष्ट देने आयी हूँ।"

"तुम्हारा मतलब?"

"बहिन! आप तो सुशिक्षिता हैं, ज़रा-सी बात भी नहीं समझतीं!"

"मैं नहीं समझती! साफ़-साफ़ कहो न?"

श्यामाके कलेजेपर साँप लोट गया। गुस्सा आया कि कह दें, अब क्यों समझोगी ? समझती तो उस रोज थीं, जब मेरे पतिके साथ बैठकर ढेरों कुलफियाँ चाट जाती थीं। परन्तु नहीं, उसे अपने पतिके लिए बीणासे पाव भर दूध जो प्राप्त करना था। उसने बड़ी नम्रतासे कहा—"बहिन जी ! आज दूधवाला अभी तक नहीं आया। आप कृपया पाव भर दूध मुझे दे दीजिए। जब मेरा दूधवाला आयगा, तो आपको वापस दे जाऊँगी।"

"हाँ, मैं तुम्हारे पतिके लिए पाव भर दूध दे दूँ और मेरे बच्चे भूखों मरें ! मुझे सब मालूम है, ग्वाला अब तुम्हें दूध देगा ही कब जो मुझे वापस करोगी ? बड़ी दूध पिलानेकी शौक़ीन हो, तो ग्वालेके रुपये क्यों नहीं चुका देतीं ? मायके वाले तो अमीर हैं। उन्हींसे रुपये मँगा लेतीं। फिर एक दिनकी बात हो तो दे भी दिया जाये, रोज़-रोज़ मैं तुम्हें दूध कहाँसे दूँगी ?

"बहन गुस्सा क्यों होती हो ? मैं बच्चोंको भूखा रखकर थोड़े ही दूध लूँगी। यदि काफ़ी नहीं है, तो रहने दें। इसमें इतना तिनककर बोलनेकी कौनसी बात है ? और आजके पहले मैं तो कभी आपसे कोई चीज़ माँगने नहीं आयी। मेरा भाग्य ही ऐसा है ! मैं इसके लिए किसीको दोष नहीं देती।"

बस, फिर श्यामा बिना कुछ कहे-सुने, वहाँसे लजाकर चल दी। चलते समय उसने देखा कि प्रोफ़ेसर साहबके छोटे लड़केने दूध-भरा एक गिलास पैर मारकर लुढ़का दिया।

दूध फैलते देख वीणा भुनभुना उठी—"डायन, खाली गिलास लेकर सवेरे-सवेरे आ पहुँची! डायनकी नज़र ही इतनी खराब है कि इतना दूध आख़िर फैल ही गया।

३

आज दीवाली है। ग़रीबसे गरीब आदमी भी आज अपने घर कुछ खिलौने, कुछ खीलें और कुछ मिठाई ज़रूर लाता है। किन्तु श्यामाके लिए यह दिन एक अभिशाप बनकर आया। जो कुछ रुपए-पैसे थे, वे सब अपने प्राणेश्वरकी दवादारूमें खर्च कर चुकी थी। आज वह असहाय अबला थी। अबतक वह किसी तरह घरका खर्च चलाती रही, रुग्ण पतिको उसने व्ययके सम्बन्धमें जरा भी चिन्तित नहीं होने दिया, किन्तु जब भगवान् ही किसीका साथ न देता हो, तो लाख सिर पटकनेसे भी क्या होता है? दूध वालेने दूध देना बन्द कर दिया। डाक्टरने धनाभाव देखकर दवा देनी बन्द कर दी। वह सोचती—"यदि कुछ रुपए होते, तो अपने भाईको तार ही दिलवा देती। परन्तु वे अभी कैसे आ सकते हैं, वे तो लड़ाई पर गए हैं। उन्हें छुट्टी मिल ही कैसे सकती है?"

रामदेव जो कलतक दूधके लिए चिल्ला रहा था, आज बिल्कुल शान्त है। वह आज दूधका नाम तक नहीं लेता।

श्यामा सोचती, न मालूम कैसे सारी बातें मेरे परमेश्वरको मालम हो गयीं। हे भगवन्! यह तूने क्या किया? यह धक्का इनसे कैसे सम्हाला जायगा? ऐ पूँजीपतियो! क्या तुम मेरी विपत्तिमें भी हाथ नहीं बँटा सकते थे! ऐ प्रकाशको! रायल्टी

वाली पुस्तकोंके क्या तुम कुछ भी रुपए इस समय नहीं भेज सकते थे! सम्पादकों! तुमने इनकी सैकड़ों कविताएँ और कहानियाँ छापीं, फिर भी क्या तुम पुरस्कार-स्वरूप थोड़ेसे रुपए भेज कर हम लोगोंकी सहायता नहीं कर सकते थे? वीणा! क्या इस समय भी तू दया नहीं दिखा सकती थी? श्यामाके धैर्यका बाँध टूट गया – वह रो पड़ी। रामदेवने श्यामाको रोते देख कहा—

रानी! आज मैं यह क्या देख रहा हूँ। तुम रो रही हो। छीः! वीर रमणी होकर रोती हो! मुझे तुमसे अभी बहुतसे काम लेने हैं। मेरा अधूरा काम क्या तुम पूरा नहीं करोगी?"

'स्वामी, मैं कहाँ रोती हूँ? अब आपकी कैसी तबीयत है?'

'श्यामा, इधर आओ; मेरा सिर अपनी जाँघपर रख लो। देखो, आज मैं युद्ध करने जाऊँगा।'

श्यामा चौंक पड़ी। किसी अज्ञात आशङ्कासे उसका माथा ठनका। वह बोली—'नाथ! यह क्या कहते हो?'

'कुछ नहीं श्यामा! मैं कहता हूँ कि आज मेरा युद्धका दिन है। मैं आज अपनी तलवारकी प्यास शत्रुओंके खूनसे बुझाऊँगा। देखो, वह प्रकाशक है, भागा जा रहा है। श्यामा, पकड़ लो। और देखो, वह सेठ है। कह रहा है, तुम मुझे अपनी पुस्तक समर्पित मत करो। मैं तुम्हें इतने रुपये नहीं दे सकता। लखनऊसे भी चिट्ठी आ गयी। मनीआर्डर आया न? देखो, देखो, रायल्टीका हिसाब वह प्रकाशक नहीं देगा—वह बही फाड़े डाल रहा है। कितनी पुस्तकें बिकीं, वह नहीं बतलाएगा।'

'प्राणधन! क्या हुआ? शान्त रहो मेरे नाथ!'

'श्यामा, मैं अब शान्त हो जाऊँगा—हमेशाके लिए शान्त हो जाऊँगा। श्यामा, मेरी सब पुस्तकोंकी पाण्डुलियाँ मेरे साथ जला देना, उन्हें किसी प्रकाशककी हवा भी न लगने देना। तुम उनमें आग लगा देना—हाँ, आग लगा देना, श्यामा!"

"मेरे परमेश्वर! आप क्या कहते हैं! मैं यह क्या देख रही हूँ! आप अपनी आँखें ऐसी क्यों बना रहे हैं? प्राण-धन, मुझे डर लगता है।"

'श्यामा, आज दीवाली है न! सब ठीक है। वे नहीं आए। बस-बस तुम सबमें आग लगा देना। श्यामा! मुझे माफ़ करना मैं तुम्हें इस जीवनमें सुखी न रख सका। मैं अब जाता हूँ। श्यामा तु···म आ···ग···ल···गा······'

बस, रामदेव, आगे कुछ न बोल सका। उसकी पुतलियाँ फिर गईं।

श्यामा चीख मारकर उसकी लाशपर गिर पड़ी! बाहर लड़के बड़े ज़ोर-शोरसे पटाख़े चला रहे थे। सारा शहर दीपावलियोंसे जगमगा रहा था और श्यामाका घर?

सारे शहरका अन्धकार सिमटकर मानो उसीके घरमें समा गया था।

---

# अन्तर

'मेरे जाँबाज़ो! अगर्चे हम यह जानते हैं कि हमारा दुश्मन बहुत ही शहज़ोर है, उसे क़ा में लाना आसान नहीं, फिर भी

हमें अपनी तलवार और क़ूवतपर पूरा यक़ीन है। दरअसल यह देखकर हमें ताज्जुब होता है कि दुश्मनके सिपाही न जाने कौनसी अजीब व गरीब शयके बने हैं!'—सुलतान इब्राहीमने अपने सैनिकोंको सम्बोधित कर कहा।

'हुजूरे आला! दरअसल वे लोग मैदाने-जंगमें शैतानकी तरह चिपटते हैं। उनकी ख़ूनी तलवार बड़ी ही ख़तरनाक है। हमारी फ़ौज इस दफ़ा जी-जानसे लड़ी। कितने ही ऐसे बहादुर जिनपर किसी भी क़ौमको नाज़ हो सकता है, इस मनहूस लड़ाईमें काम आए। मेरी राय नाक़िसमें तो अब यह आता है कि इस मौक़ेको अब हाथसे न खोया जाय, बल्कि बहुत ही जल्द दुश्मनपर चढ़ाई कर दी जाय।'

—वज़ीरे आज़मने निवेदन किया।

'हाँ, ठीक है, ऐसा ही हो'

'शाहंशाह! हमारे बहादुरोंने 'महाराणा साँगाकी फ़ौजका एक बड़ा सरदार गिरफ्तार किया है। उसके लिए हुजूरका क्या हुक्म होता है?'

'ओह ख़ूब अच्छा उसे मेरे सामने हाज़िर किया जाय।'

'जो हुक्म'

थोड़ी देर बाद कुछ सैनिक एक क़ैदीको ले आए। क़ैदी यद्यपि ज़ंजीरोंसे जकड़ा था, फिर भी शेर बबरकी तरह अकड़ता हुआ आया। सुलताननने उससे कहा—'ऐ नौजवान, क्या तुम जानते हो कि तुम कौन हो?'

'मैं स्वनाम-धन्य महाराणा संग्रामसिंहका एक विश्वासपात्र सरदार हूँ'—क़ैदीने मुस्कुराते हुए कहा।

'तुम बेवकूफ़ हो। तुम अब भी सरदार होनेका ख्वाब देखते हो। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि तुम अब एक क़ैदी हो।'

'आपने मेरे शरीरको क़ैदी बनाया है, मेरी आत्माको नहीं। मेरा स्वाभिमान अब भी हिमालयके समान उच्च है। दुनियामें ऐसी कोई ताक़त नहीं जो उसे झुका सके।'—क़ैदीने गरजकर कहा।

'क़ैदी! तुम पागल हो, जो ऐसी बातें करते हो। बस तुम अब मरनेके लिए तैयार हो जाओ।'

'सुल्तान! बहादुर लोग मरनेसे नहीं डरते। मरना हमारे लिये एक खेल है।'

'ओह, तो तुम अब वही खेल खेलनेको तैयार हो जाओ?"

'तैयार हूँ सुलतान!'

'अपने बीबी-बच्चोंकी याद कर लो और उनके लिए दो-चार आँसू भी बहा लो।'

'छीः सुलतान! ऐसी प्रथा का प्रचलन हम बहादुरोंमें नहीं। यह रस्म तो आप ही लोगोंके यहाँ होगी। हमारे स्त्री-बच्चे आपके बीबी-बच्चोंकी तरह कायर और कमज़ोर नहीं।"

'कैदी, चुप रहो—बेहूदा बात करता है। मशकूर, उड़ा दो इसकी गर्दन।'—सुलताननें क्रोधमें कहा।

'जो हुक्म आलीजाह!' मशकूर चमचमाती तलवार ले आगे बढ़ा।

'पर हाँ, कैदी, क्या तुम्हारी कोई भी आख़िरी ख्वाहिश नहीं है ?'—सुलतानने फिर पूछा।

'हाँ, मेरी आख़िरी ख्वाहिश यही है कि मेरे हाथमें एक तलवार दे दी जाय, फिर मैं देखूँ आपकी सेनामें कौन ऐसा माईका लाल है जो मेरा अंग भी स्पर्श कर सके। फिर तो मैं समझता हूँ कि आपको भी हरममें भागनेकी ज़रूरत पड़ जायगी सुलतान।'

'तो क्या तुम मुझे हरममें पकड़ने नहीं जा सकते !'—सुलताननने विनोदने कहा।

'नहीं, कभी नहीं—दुश्मनकी मा-बहनोंको हम अपनी मा-बहन समझते हैं।'

'और दुश्मनकी औरतोंको ?'

'हम लोग सभी परायी औरतोंको मा-बहनकी नज़रसे देखते हैं।'

'तुम मुर्ख हो तुम दुनियाके मजे क्या जानो ? दुनियाके पर्देपर कैसी कैसी सुन्दरियाँ पड़ी हैं। कुदरतने उन्हें खूबसूरती इसीलिए दी है कि हम उससे अपनी जिन्दगीका लुत्फ़ उठाएँ। राजा इन्दरकी परियोंके मानिंद ये चुलबुली माशूकाएँ आखिर किस लिए बनाई गयीं हैं ? क्या मा-बहन बनानेके लिए ? नहीं, तुम लोग तो मा-बहन कहकर ही इनको छोड़ देते हो—यह तुम लोगोंकी बुजदिली है। हम हरममें ले जाकर उनकी पूरी खातिर-दारी करते हैं। उनकी ख्वाहिशें पूरी करनेके बाद हम अपनी

ख्वाहिशें उनसे पूरी करते हैं। कभी-कभी उनके मामलेमें हमें अपनी ताकतका भी इस्तेमाल करना पड़ता है—यह हमारी बहादुरी है—जिन्दादिली है कैदी !'

'इस मामलेमें आपकी नजरोंमें मैं जरूर मुर्ख हूँ। मैं मुर्ख हो सकता हूँ, परन्तु पतित नहीं। सुलतान! जिसे आप बहादुरी और जिन्दादिली समझते हैं - मैं समझता हूँ वह बुज-दिली और मुर्दादिली है—नीचता और कमीनापन है। इसका अनुभव तो आपको उस समय होगा जब आप किसी राजपूत-रमणीके सामने सहुँचेंगे। वे जितनी ही सुन्दर होती हैं उतनी ही पवित्र और निर्भीक। आपकी ताकत उनके सामने बेकार साबित होगी। आपके प्रलोभन उनके सामने हवा हो जायेंगे। आप बुजदिल औरतोंसे ही अपने दिलकी ख्वाहिश जबरन पूरी कर सकते हैं; उस किस्मकी औरतें आपके यहाँ होती होंगी, पर हमारे यहाँ वैसी औरतोंकी पैदाइश नहीं। सुलतान! यह वीर-वसुन्धरा है। हमारे यहाँ माशूक नहीं, मशीहा हैं। आपकी बहादुरी और जिन्दादिलीका सबसे बड़ा सबूत तो यही है कि मुझ जैसे एक नाचीज सरदारको सँभालनेके लिये आपके इतने सिपाही नङ्गी तलवारें लिये खड़े हैं। एक निहत्थेपर एक हजार तलवारें। शर्मकी बात है सुलतान! अगर मुझे तल-वार तो दूर लोहेका एक डण्डा ही मिल जाय, तो फिर मैं आपके सारे सरदारोंको नाकों चने न चबवा दूँ, तो मेरा नाम नहीं।'

'सच क्या तुम दरअस्ल ऐसे ही बहादुर हो ? तो फिर एक काम करो, मैं तुम्हें छोड़ दूँगा, लेकिन साँगाकी फौजमें जानेके लिये नहीं। तुम मेरी फौजके सिपहसालार बनो। मैं बहादुरोंकी इज्जत करता हूँ। फिर मुझे बतलाओ कि रानाको किस तरह फतह किया जाय ?

'सुलतान! भूखा होनेपर भी शेर घास नहीं खाता। कहाँ स्वनामधन्य महाराणा सांगा जैसा वीर और कहाँ आप जैसा मुर्दादिल, कायर और नीच! मैं ऐसे मनुष्यकी सेनाका सेनापति नहीं बन सकता। बुजदिलकी मातहतीसे मौत अच्छी। मेरा यह सिर सिवा महाराणाके और किसीके आगे नहीं झुका, मैं ऐसी बातें सुनना भी पाप समझता हूँ। आप जैसे पापियोंके बीच साँस लेनेमें भी प्रायश्चितकी आवश्यकता है।,

'तो क्या तुम्हारा राना कभी मेरे कदमोंमें नहीं लोटेगा ? मैं सुलतान हूँ—उसे नेस्तनाबूद कर दूँगा। उसके महलोंकी ईंटसे ईंट बजा दूँगा। उसका जनानखाना मेरा लौंडीखाना बनेगा।'

'चुप रहो, कुत्तेकी तरह भौंकनेसे क्या फायदा ? तुम—'

'मार दो मशकूर!'—सुलतान इब्राहीमने बीच ही में गरज कर कहा।

बस फिर बात-की-बातमें ही सरदारका सिर धरसे उड़ा दिया गया। सरदारका धड़ आवेशमें बादशाहकी ओर दौड़ा। सैनिक तलवारें ले दौड़ पड़े; उसको छिन्न-भिन्न कर डाला।

परन्तु बहादुर सरदारका वीर धड़ गिरते-गिरते कइयोंको घायल कर गया।

'देखो मेरे बहादुरो! इस राजपूतकी वीरता। मैं चाहता हूँ, मेरी फौजका हरएक सिपाही ऐसा ही ज़वांमर्द बन जाय। ओह! दुश्मनकी बहादुरी देखकर तो जरूर ही दाँतों-तले उङ्गली दबानी पड़ती है' – सुलतानने कहा।

'आलीजाह! यह शोर कैसा?'—बजीरे आजमने चौंक कर कहा।

'मालूम पड़ता है, राजपूत-फौजें हैं। अच्छा, तैयार हो जाओ। भेड़ियेकी तरह भेंड़ोंपर टूट पड़ो' – सुलतानने गरज कर कहा।

थोड़ी देरमें ही राजपूत-सेना वहाँ पहुँच गयी। बड़ा ही लोमहर्षण संग्राम हुआ। शीघ्र ही रुण्डों और मुण्डोंके पहाड़-से बन गये और उन पहाड़ोंसे रक्त-सरिता बह चली। उस सरिता में ढालें कछुओंके समान बहती दृष्टिगोचर हो रही थीं। मरे हुए वीरोंकी तलवारें सर्पिणियोंके समान फुँकार रही थीं। कुछ लाशें दरियामें इधर-उधर बही चली जा रही थीं। किसी-किसी लाशपर कुछ गृद्ध भी बैठे बहे चले जा रहे थे। वे शवकी आँखें निकालनेमें इतने व्यस्त थे कि कभी-कभी सैनिकोंके उन वाणोंसे, लक्ष्य-वेध न कर उधर आ जाते थे, उड़कर बचनेकी परवाह ही न करते थे। चील, कौए, कुत्ते और स्यार युद्धभूमिमें अपने नाते-दारोंको बुलाकर प्रीतिभोज दे रहे थे, और न जाने कैसे-कैसे

भयङ्कर जीव वहाँ थे। घाटोलीका यह संग्राम बाकरौलके संग्राम से कुछ कम भयङ्कर न था।

सुलतान इब्राहीम अपनी सेनाको ज़ोश और क़समें दे दे कर आगे बढ़ानेकी कोशिश कर रहा था, परन्तु महावीर राजपूतोंके आगे उसकी एक न चली। उसकी सेना गाजर-मूलीकी भाँति काट डाली गयी। जो कुछ सिपाही बचे, उन्होंने भागकर अपनी जान बचायी। इब्राहीम दिल्लीकी तरफ भागा परन्तु महाराणाके दिलेर सैनिकोंने उसे जीवित ही गिरफ्तार कर लिया। मशकूर और बजीरे आजम भी उस लड़ाईमें काम आये, जिसका सुलतान इब्राहीमको बड़ा दुःख रहा।

राजपूत सेना विजय-पताका फहराती हुई चित्तौड़ लौट आई।

## २

सुलतान इब्राहीमकी गिरफ्तारीकी खुशीमें समस्त मेवाड़में बड़े समारोहके साथ उत्सव मनाया गया। सबने अपने-अपने गृहोंको तोरण बन्दनवार आदि से सजाया। चित्तौड़ नगर दीपावलियोंसे जगमगा उठा। नगरके प्रायः सभी राजपथ शीतल जल और सुमनोंसे सिंचित थे। चित्तौड़ दुर्गकी शोभा तो अवर्णनीय थी। फरफर फहराती हुई मेवाड़ी पताका बड़ी ही भव्य प्रतीत हो रही थी। राज-महल ललनाओंके मङ्गल-गानोंसे गुञ्जायमान था। सभी जगह मङ्गलवाद्य बज रहे थे। सभी जातियोंके स्त्री-पुरुष, हिन्दूपति महाराणा—संग्रामसिंहका जय

जयकार मना रहे थे, और देवालयोंमें महाराणाकी दीर्घायुके लिए कामनाएँ कर रहे थे। मेवाड़का बच्चा-बच्चा खुशीसे फुला न समाता था। लोग कहते थे—सुलतान तो अब हाथ आ ही गया, इसको महाराणाजी मौतके घाट उतार कर शीघ्र ही दिल्लीके सिंहासन पर विराजमान होंगे। कुछ लोग कहते थे—नहीं हमारे हिन्दूपति कभी कैदी सुलतान पर हाथ नहीं छोड़ेंगे, यह राजपूती शानके खिलाफ है।

सैनिक वीर वेशमें बढ़िया-बढ़िया वस्त्रोंसे सुसज्जित राज दरबारकी ओर बढ़े चले जा रहे थे।

थोड़ी देर बाद हिन्दूपति महाराणा संग्रामसिंहका दरबार लगा। दरबारमें बड़े-बड़े शूर-सामन्तोंके अतिरिक्त सात बड़े-बड़े राजा, नौ राव, एक सौ पचीस रावल और उतने ही रावत भी थे। वे योद्धा, जिनके संग्राममें बहुत ही घातक घाव हुए थे, अपनी सारी पीड़ाएँ भूल, प्रसन्नमुख राजदरबारमें आ डटे थे। हिन्दूपति महाराणा संग्रामसिंह साक्षात् इन्द्रसे प्रतीत हो रहे थे। थोड़ी देर बाद दरबारमें क़ैदीके रूपमें सुलतान इब्राहीम हाजिर किये गये सुलताननने चारों ओर आश्चर्यसे देखा। महाराणाको अपनी ओर देखते पाकर आँखें नीची कर लीं।

दरबारमें पूर्ण निस्तब्धता थी।

जरा देर बाद निस्तब्धता भङ्ग करते हुए महाराणा बोले—'सुलतान साहब! कैसी तबियत है? मेरे कारागारमें आपको किसी तरहकी तकलीफ तो नहीं हुई?'

सुल्तान चुप थे।

महाराणा फिर बोले—'सुल्तान साहब ! आप यों दुबक कर क्यों खड़े हैं ? आप तो शेर हैं। शेरने यह भेड़की आदत कबसे सीख ली ?'

'महाराणा ! मैं अपनी जुबान से एक लफ्ज भी नहीं बोलना चाहता।'—सुलतानने कहा।

'क्यों सुलतान साहब, ऐसा क्यों ? यह लोदी-राज्य नहीं है, जहाँ बोलना गुनाह समझा जाता हो—यों ही बेगुनाहोंको फाँसी दिलवा दी जाती हो। आप बोलिये और शौकसे बोलिये। मैं हर एक आदमीके तर्क-वितर्ककी इज्जत करता हूँ।'

'महाराणा साहब, मुझे अफसोस है कि आपके सिपाहियोंने मुझे फरेबसे पकड़ा। अगर उस वक्त मेरे हाथमें तलवार होती तो मैं उन्हें मजा चखाता।'

'सुलतान, मैं यह माननेको एकाएक तैयार नहीं कि मेरे सैनिकोंने आपको छल या फरेबसे पकड़ा। मुझे अपने सैनिकोंसे ऐसी बुजदिली की आशा नहीं। हाँ, अगर आपका हौसला तलवारके दो-चार हाथ दिखानेका है, तो यह लीजिये मेरी तलवार। मेरा और आपका जोड़ बराबरका है। यदि आपकी तलवारसे मैं मारा गया तो मेरे सैनिक आपके सैनिकोंकी तरह धाँधली नहीं करेंगे। वे एक एक कर आपसे लड़ेंगे ! एक आदमी पर दसका टूट पड़ना अन्याय है आप उस अन्यायके पृष्ठपोषक रहे हैं सुल्तान।' महाराणाने मुस्कुराते हुए कहा।

'नहीं मुझमें अब कूवत नहीं, जो आपका मुकाबला कर सकूँ। आपके जेलखानेने मुझे बहुत ही कमज़ोर कर दिया है।' सुलतानने उत्तर दिया।

'ओह, आपकी नज़ाकत की तो हद हो गयी। दो ही दिनमें आपका यह हाल। सुलतान यह कोरा बहाना है। यह बुजदिली है। आखिर हरममें छिपनेवालोंसे और क्या उम्मेद की जा सकती है? सुलतान! मैं वीर-पूजक हूं, मैं बहादुरोंकी इज्जत करता हूँ। आपके इस कार्यसे मुझे शर्म आ रही है। अच्छा, मैं आपको बन्धन-मुक्त किये देता हूँ। आप एक महीने तक यहाँ कैदीकी हैसियतसे नहीं, मेरे एक दोस्तकी हैसियतसे रहिये। बढ़िया भोजन कीजिये—तगड़े बनिये, फिर मेरी इसी तलवारसे अपने हौसलेको पूरा कीजिये।'

'महाराणा साहब, मैं आपकी कोई बात सुननेको तैयार नहीं' सुलतानने रुखाईसे कहा।

'सुलतान! क्या आपको मालूम है कि आप किससे बात कर रहे हैं। मैं आपसे किस प्रकार बात कर रहा हूँ और आप उसका ऊत्तर किस बेहूदा तरीकेसे दे रहे हैं।

आप इस वक्त शाहंशाह नहीं, मेरे कैदी हैं। मैं चाहूँ तो आपकी बोटी बोटी उड़वा दूँ। आपका सारा घमण्ड धूलमें मिला दूँ, जमीनमें गड़वाकर आपको कुत्तोंसे नोचवा डालूँ।"—महाराणा साँगाके विशाल भुजदण्ड फड़कने लगे।

सुलतानके मुंहसे एक शब्द भी न निकल सका।

'हिन्दूकुलतिलक! अब दुश्मनको अधिक जीवित न रखा जाय। हम लोग समझते हैं कि इस नीच सुलतानके लिए प्राण-दण्ड ही सबसे अधिक उपयुक्त है।'—महाराणाके महामात्यने निवेदन किया।

महामात्यजी, आप कैसी बातें करते हैं। शेर होकर स्यार-की बातें करते हैं। घर आया दुश्मन नहीं अतिथि है। हमारी भारतीय संस्कृतिमें अतिथियोंकी पूजा की जाती है, उन्हें मारा नहीं जाता। फिर क्षत्रियोंको निहत्थों, बुज़दिलों और कायरों पर हाथ कभी नहीं छोड़ना चाहिये'—

महाराणाने महामात्यसे कहा।

'श्रीमन्! यह ठीक है, परन्तु यह राजनीतिके विरुद्ध है। आगकी जरासी चिनगारी भयङ्कर रूप धारण कर लेती है, बड़े-बड़े नगरोंको स्वाहा कर डालती है। दुश्मन और साँपके बच्चेको जीवित छोड़ना ठीक नहीं महाराज! फिर उस नर-पिशाचको जिसने हमारे महावीर सरदार विजयसिंहको अन्याय से मौतके घाट उतार दिया है। कल की ही तो बात है महाराणा! कहाँ जञ्जीरोंमें जकड़ा अकेला निहत्था विजयसिंह और कहाँ इस नर-पिशाचके हजारों सैनिक। बस हिन्दूकुलतिलक! बहुत हो चुका—बहुतसे अन्याय इन आँखोंसे देख लिये। अब आप मुझे क्यों नहीं आज्ञा देते कि अपनी चमचमाती हुई तलवारसे इसका सिर एक ही बारमें भुट्टे-सा उड़ा दूँ।'

'महामात्यजी! शान्त रहिये। अतिथि और निस्सहायके लिये ऐसे कटु बचनोंका प्रयोग न कीजिये। माना, यह नीच है, पतित है। परन्तु पतितके साथ यदि हम भी पतित हो गये तो हममें और उसमें अन्तर ही क्या रहा? फिर हमें क्या अधिकार है कि हम पतितको पतित कह सकें। मैं मानता हूँ, आगकी जरा-सी चिनगारी महाभयङ्कर रूप धारण कर लेती है। चुटैल शत्रु और साँपको जीवित छोड़ना बुद्धिमानी नहीं, पर हमें ऐसे बुजदिल दुश्मनोंसे जरा भी भय नहीं, उन्हें बढ़ने दो, हिमालय से टकराने दो, स्वयं चूर-चूर हो जायँगे।'

'तो महाराज! क्या आपने सुलतानके लिये मृत्यु-दण्डके अतिरिक्त कोई और दण्ड सोचा है?'

'हाँ, अतिथि और निस्सहायको जो दण्ड वीरोंके यहाँ दिया जाता है, वही दण्ड सुलतानको दिलवाता हूँ।'—महाराणाने मुस्कराते हुए कहा।

सारी सभा आश्चर्यित थी। राजा, रावल और रावत सब एक दूसरेका मुँह ताक रहे थे। महाराणा सिंहासनसे उठे और सुलतानकी ओर मुँह करके बोले—

'सुलतान, अगर मैं चाहूँ तो तुम्हारी बोटी-बोटी उड़वा दूँ, परन्तु नहीं, मैं वीरोंकी इज्जत करता हूँ, मैं अतिथियोंका आदर करता हूँ, मैं निस्सहायोंको प्यार करता हूँ। आप यद्यपि वीर नहीं, पर अतिथि और निस्सहाय तो हैं। सुल्तान जरा आगे बढ़िये—देखिये यह मेवाड़का झण्डा फहरा रहा है—वह

चित्तौड़का किला है। सात बार झुककर झण्डे और किलेको सलाम कीजिये।'—महाराणाने सागरकी तरह गम्भीर होकर कहा।

सुलतान महाराणाकी रौद्र-मूर्ति देखकर भयभीत हो गया। उसने चुपचाप महाराणाके आज्ञानुसार सात बार झुककर झण्डे और किलेको सलाम किया! दरबार बड़ी उत्सुकतासे महाराणा की दूसरी आज्ञा सुननेके लिए उतावला हो उठा।

महाराणा कुछ और आगे बढ़े।

'सुलतान'—कहते हुए महाराणाने अपनी तलवार विद्युत-वेग से म्यानसे खींच ली।

सुलतान काँप उठा।

दरबार चकित था।

मन्त्री मुस्करा रहा था।

तलवार हवामें चमचमा रही थी।

महाराणाने अपनी तलवार सुलतान की गर्दनपर झुका दी। सुलतानके मुंहसे निकल गया—'जान बख्श दीजिये, महाराणा?'

महाराणा मुस्कराये। तलवार गर्दन छू कर फिर म्यानमें वापस आ गयी।

'सुलतान! मैं आपकी जान बख्शता हूँ। आप मेरे निस्सहाय अतिथि हैं। जाइये, फिरसे सेना सजाइये और मेरी गुस्ताख़ीका मुझसे बदला लीजिये। मैं मैदाने-जङ्गमें आपको देखकर बहुत खुश होऊँगा। सैनिको! सुलतानको बन्धन-मुक्त

कर दो और इन्हें आदर पूर्वक मेवाड़की सीमाके बाहर पहुँचा आओ—। देखो इन्हें किसी प्रकारकी तकलीफ न हो। यात्राका सरा प्रबन्ध मन्त्रीजी आप ठीकसे करा दीजिये।'—महाराणा साँगाने सुलतान और सभाको सम्बोधित कर कहा।

बस फिर बातकी बातमें सुल्तानके बन्धन काट दिये गये।

जरा देरमें कुछ सैनिक सुलतानको लेकर चल दिये।

लोगोंने देखा, जाते वक्त सुल्तानका सिर महाराणाके सामने आप ही आप झुक गया और उसकी आँखोंसे दो बूँद आँसू भी टपक पड़े।

---

# फ़ोटो

'मिस्टर नरेन्द्र! आपका एलबम तो बड़ा ही सुन्दर है—चित्रोंका संकलन वास्तवमें प्रशंसनीय है'—वीरेन्द्रने मुस्कराते हुए कहा।

'अच्छा, आपको पसंद आया ?'—नरेन्द्रने पूछा।

'मुझे बेहद पसंद आया। आपके मित्र भी बड़े-बड़े आदमी हैं। उनके फोटो आपने खूब ही एकत्र किए।'

—कहकर वीरेन्द्र फिर एलबमके पृष्ठ उलटने लगा।

'मैं आपके प्रशंसा करनेके ढङ्गकी तारीफ करता हूँ।'

'हैं! यह चित्र कैसा ? अरे! आपने यह चित्र उलटा क्यों लगा दिया ?'..वीरेन्द्रने आश्चर्यसे पूछा।

'मि० वीरेन्द्र क्षमा कीजिये, इस चित्रको आप ऐसा ही रहने दीजिये'—नरेन्द्रने विनीत भाव से कहा।

'क्यों ?'

'मै इस क्योंका उत्तर देनेमें असमर्थ हूँ।'

'क्यों ?'

'मैं क्या बताऊँ मि० वीरेन्द्र ?'

'मैं बिना जाने मान नहीं सकता। मैं इस चित्रको जरूर उलटकर देखूँगा।'

'ओह! मि० वीरेन्द्र, आप नहीं माने, आपने चित्र उलट ही दिया।

'ओह! यह फोटो तो किसी अनिंद्य सुन्दरीका है। क्या इसमें कोई राज छिपा है। आपके एलबममें सर्वश्रेष्ठ मैं इसी बालाके चित्रको समझता हूँ। क्यों नहीं दिखलाते थे यह फोटो मुझे मि० नरेन्द्र ?'

'मि० वीरेन्द्र, आपने सुप्तस्मृतियोंको तो अब जगा ही दिया। आप ठीक कहते हैं, इस फ़ोटोमें यथार्थमें एक बड़ा राज छिपा है। भाई! इस फोटोकी भी एक कहानी है'—नरेन्द्रने दु:खी होकर कहा।

'भाई, क्या कहानी ?—मैं उसे जरूर सुनूँगा।'

'हाँ, अब मैं वह कहानी आपको अवश्य सुनाऊँगा।'

'अच्छा तो सुनाइये'—वीरेन्द्रने उत्सुकता प्रकट करते हुए कहा।

'मि० वीरेन्द्र, यद्यपि आज उस घटनाको घटे कितने ही वर्ष हुए, फिर भी ऐसा ही लगता है मानो वह घटना कल ही घटी हो।'

यह घटना उन दिनोंकी है जब मैं कलकत्तेमें था! मेरे एक दोस्त थे। थोड़े ही दिनोंमें उनसे मेरी काफी दोस्ती हो गयी थी। यद्यपि उनको कलकत्ता आए कुछ ही दिन हुए थे! धीरे-धीरे घनिष्ठता यहाँ तक बढ़ी कि एक दिन उन्होंने अपनी नव-यौवना पत्नीके बारेमें भी मुझसे बहुत सी बातें की। मैंने भी उन्हें अपनी स्त्रीकी कुछ बातें बतलायीं। सुहागरातको वे अपनी स्त्रीसे किस प्रकार मिले—विवाहसे पहले किस प्रकार वे उससे बातें करनेमें सफल हुए—आदि आदि दर्जनों बातें उन्होंने मुझे ऐसी बतलाईं जिनपर कितनी ही मजेदार कहानियाँ लिखी जा सकती हैं।

एक दिन वे बोले—'जब मैं छोटा था, तो स्त्रियोंसे घृणा किया करता था; उनकी परछाईं तकसे परहेज करता था, किन्तु मेरी राधाने आकर मेरी दृष्टिमें अपने ही को नहीं बल्कि स्त्री-मात्रको उच्च बना दिया। राधा जैसी स्त्री शायद ही कोई और हो। यदि मुझे राधा न मिलती तो मैं सदैव कुँवारा ही रहता। राधा! ओह, उसने तो मुझे अपने सद्गुणोंसे सदैवके लिए वशमें कर लिया। वह जितनी ही सुन्दर है, उतनी ही पवित्र है।"

'मुझे इस बातकी खुशी है कि आपको इतनी अच्छी जीवन-संगिनी मिली। किन्तु भाई ! फिर भी मैं यह कहूँगा कि स्त्रियोंके मनकी बात ताड़ लेना हम और आप जैसे पुरुषोंके लिए असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है'—मैंने उनसे कहा।

वे बोले—'मुझे ध्रुव विश्वास है कि मेरी राधा वास्तवमें राधा ही है। मैं उसे एक वरदान समझता हूँ। वह नन्दन-निकुञ्जकी एक मनोहारिणी देवी है। उसमें और स्त्रियोंकी तरह छल-छद्मका नाम भी नहीं। वह मेरे बिन एक पल भी नहीं रह सकती। वह मेरे आगे अपने प्राणोंको भी तुच्छ समझती है।'

'यह आपका सौभाग्य है, पर आजकल इन पढ़ी-लिखी अपटूडेट लड़कियों से मैं तो ऐसी आशा नहीं रखता। वे तो फैशन और समानाधिकारके पीछे पागल हैं। पुरुषको वे अपने सामने कुछ भी नहीं समझतीं। लोग वेश्याओंके लिए कहते हैं कि वे धनपर मरती हैं। मैं पूछता हूँ, क्या कालेजकी पढ़ी-लिखी एम० ए०, बी० ए० साहित्यरत्न, शास्त्री, प्रभाकर पास रङ्ग-बिरङ्गी तितलियाँ धनपर नहीं मरतीं ? देखते नहीं हो ? हाथ कङ्कनको आरसी क्या ? कैसे-कैसे खूसट बुड्ढोंपर सुशिक्षिता नवयुवतियाँ रीझी हैं। अरे यार, सच कह दूँ—वे खूसट बुड्ढों-पर नहीं, उनकी अपार सम्पत्ति पर रीझी हैं। क्या यह उनके लिए शर्मकी बात नहीं ?'—मैंने आवेशमें उनसे कहा।

'हाँ, यह सब मैं मानता हूँ—फिर भी मुझे अपनी बात पर विश्वास है। अच्छा, अब जाऊँगा। राधा मेरी राह देख रही होगी।'

बस फिर वे मेरे दोस्त चले गए।

मैं अपने उन मित्रकी बातोंको बड़े चावसे सुनता था और यही कारण था कि वे मुझे अपनी गुप्त-से-गुप्त बात भी बतला दिया करते थे।

एक दिनकी बात है - मैं अपना यही एलबम, जिसे तुम देख रहे हो, लिए पलङ्गपर लेटा हुआ था। मेरे दोस्त आए और सीधे अन्दर चले आए। बोले —'बड़ा अच्छा है आपका एलबम !'

बस फिर उन्होंने एलबम मेरे हाथसे ले लिया और बड़े ग़ौरसे उसे देखने लगे ! चित्रोंका संक्षिप्त परिचय भी वे मुझसे पूछते जाते थे, किन्तु ज्योंही उनकी दृष्टि इस चित्र पर पड़ी, वे अवाक रह गए। वे आँखें फाड़-फाड़कर उसे देखने लगे। कुछ देर बाद बोले —'यह किसका फ़ोटो है ?'

मैंने हँसते हुए कहा — 'यह फ़ोटो मेरी एक प्रेमिकाका है। मैं इसे दुनियामें सबसे ज्यादा चाहता हूँ और यह भी मुझे बहुत ही प्यार करती है।'

'हूँ ! परन्तु यह तो बतलाइए, यह कहाँ रहती है ?'— उन्होंने पूछा।

'भाई ! यह मैं नहीं बता सकता।' मैंने कहा।

'अच्छा, मैं अब जाता हूँ।'

फिर ज़रा रुककर वे बोले—'क्या तुम यह फ़ोटो मुझे एक दिन के लिए दे सकते हो ?'

मैंने कहा—'यह फ़ोटो मुझे किसीको भी देनेकी आज्ञा नहीं है। परन्तु हाँ, तुम मेरे दिली दोस्त हो, मैं तुम्हें अवश्य दूँगा। परन्तु खबरदार, इसे किसी औरको मत दिखाना और कल ही मुझे वापस कर देना।'

'इतमीनान रखो, मैं इसे किसीको भी न दिखाऊँगा।'—उन्होंने कहा।

बस फिर वे चले गए।

मैंने दूसरे दिन उनकी बड़ी राह देखी; पर वे न आए। तीसरा दिन भी यों ही गुज़र गया। चौथे और पाँचवें दिनका भी वही हाल रहा। छठे और सातवें दिन मैं बड़े साहबके आ जानेसे यों ही बहुत व्यस्त रहा। आठवें दिन मुझे एक पत्र मिला। लिफाफेपर छपा हुआ नाम देखते ही मैं पहचान गया कि पत्र मेरे उन्हीं दोस्तका है। जल्दीसे मैंने लिफाफेको खोला और पढ़ा:—

'मेरे निष्कपट दोस्त,

मैं यह फ़ोटो तुम्हें वापस भेज रहा हूँ। मुझे माफ करना। मेरा 'कल' आठ दिनके बाद आया, मैं तदर्थ लज्जित हूँ। तुम सच कहते थे, स्त्री-चरित्र कभी भी नहीं जाना जा सकता। मैं मूर्ख था—गधा था जो राधाको इतना ऊँचा समझ बैठा था। उसने अपने हावों-भावोंसे बिलकुल ही मुझे वशमें कर लिया था; परन्तु मुझे क्या पता था कि वह देवीके रूपमें दानवी है। वह कितनी भोली भाली बनती थी मेरे सामने। पातिव्रत-धर्म

उसका कितना खोखला था, यह मैंने उस दिन जाना जब मैंने अपनी प्राणेश्वरी राधाका फोटो तुम्हारे एलबममें देखा। मैं वह फोटो तुमसे मांगकर घर लाया। तुम समझते होगे कि मैंने घर आकर राधाको डाँटा होगा और वह फोटो उसे दिखलाया होगा, परन्तु नहीं, मैंने यह कुछ नहीं किया। बल्कि उसी रातको मैं राधा-सहित पंजाब-मेलसे रवाना हुआ। यहाँ आकर मैं एक धर्मशालामें अपना सामान रख राधा-सहित गंगा-नदीके समीप एक निर्जन स्थानमें अपना खञ्जर लेकर गया। मैंने वहाँ राधाको वह चित्र दिखाया और सारी बातें कबूल देनेको कहा। राधाको यह फोटो देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरे लाख समझाने पर भी वह कुछ नहीं कबूली। बार बार कहती रही—इतना बड़ा फोटो मैंने अबतक अपनी जिन्दगीमें कभी नहीं खिचवाया। एकबार पिताजीके साथ रुपयेके ८ पोज़ जरूर खिचवाए थे। मैं यह फोटो आपके मित्रको किस प्रकार दे सकती हूँ ?'

फिर मुझे ताव आ गया। मेरा प्रेम घृणामें परिणत हो गया। वह मुझे भयंकर काली नागिन सी मालूम होने लगी। मैंने उसके बालोंको झकझोर डाला, फिर भी वह नहीं कबूली। बस मैं क्रोधसे पागल हो गया—खचाक - अपना खञ्जर उसके कलेजेमें घुसेड़ दिया। बस फिर क्या था, एक चीखके साथ उसका निर्जीव शरीर जमीनपर गिर पड़ा। मैंने उसकी लाशको बालूमें दबा दिया। थोड़ी देर मैं अवश्य ही किंकर्त्तव्य-विमूढ़ रहा, परन्तु फिर शीघ्र ही मैंने आगेका कार्यक्रम सोच लिया।

यह पत्र मैं तुम्हें पेन्सिलसे लिख रहा हूँ। अच्छा, मैं अब अधिक न लिखूँगा - लेटरबाक्समें मैं स्वयं इसे डालने भी न जा सकूँगा। कारण ; मुझे पंजाब मेलसे जो यहाँ तीन बजे पहुंचेगी, कटकर आत्महत्या करनी है। अच्छा तो मैं इस पत्रको एक लड़केको चार आने देकर लेटरबाक्समें डालनेको भेज रहा हूँ। मुझे इसमें भी सन्देह है कि यह पत्र तुम तक पहुंच भी सकेगा या नहीं। खैर कुछ भी हो, तुम्हारी बातें मुझे अब तक याद हैं। यह फोटो तुम्हें प्रिय है इसे तुम अपने एलबममें रखना – परन्तु सीधा नहीं, उल्टा जिससे उसे दूसरे न देख सकें। हाँ, यदि इससमय तुम यहाँ होते, तो मैं तुम्हारा भी खून जरूर कर देता। अच्छा ईश्वरको धन्यवाद दो कि तुम बच गये। मेरी लाश तो आज ३ बजे रेलकी पटरीपर भिनकती होगी। मेरी घड़ीमें २॥ बज गये हैं ... सिर्फ १५ मिनटकी ही देर है। बस विदा।

—तुम्हारा कोई भी नहीं"

मि० वीरेन्द्र सच मानिये ; पत्र पढ़कर मैं रोया और खूब रोया। चाहा कि मैं भी आत्महत्या कर लूँ- मेरे कारण एक बना बनाया घर बिगड़ गया दो सच्चे हृदय नेस्तनाबूद हो गये। अफसोस अदअफसोस, हाय ; गलतफ़हमीने कैसा भयङ्कर काण्ड रचा।'

'बड़ा बुरा हुआ ! अच्छा तो आपको वह फोटो कहाँसे मिला था ? क्या आपको वह फोटो राधाने नहीं दिया था !'—वीरेन्द्रने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

'कौन राधा ? किसकी राधा ? मैं तो उस फोटोसे परिचित तक न था।'

'फिर आपको वह कैसे मिला ?'

'कैसे मिला, अरे भाई ! एक दिन मैं अवध स्टूडियोमें अपने दो मित्रोंके साथ फोटो खिंचाने गया था। वहाँ बहुतसे निगेटिव रखे हुए थे—मैंने ऊपर वाला छोटा निगेटिव उठाया और गौरसे देखनेके बाद यों ही खेल खेलमें जेबमें डाल लिया, फिर यहाँ आकर यों ही कौतूहलवश उस निगेटिवको प्रिंट करानेपर पता चला कि वह निगेटिव किसी नवयौवना बालाका है। मुझे उस युवतीका फोटो बड़ा ही भाया। मैंने उसे निगेटिवसे मैंटिंग पेपर पर केबीनेट साइजका एक सुन्दर फोटो बनवाया और उससे अपना एलबम सजाया।'

'तो क्या यह वही फोटो है ?'- वीरेन्द्रने आश्चर्यसे पूछा।
'हाँ भाई, यह वही फोटो है जो दो निरपराध प्राणियोंकी जान ले चुका है और शायद अब एक तीसरे प्राणीकी भी जान लेनेको सोच रहा है। भाई! मेरे ही कारण उन दोनोंकी सुनहली दुनिया उजड़ गयी। हाय, अब मुझे जरा भी शान्ति नहीं मिलती।'

'मि० नरेन्द्र पागल न बनिए। उठिए, दफ्तरको देर हो रही है।'

'मि० वीरेन्द्र, मुझे भरपेट रो लेने दीजिये। मैं आज दफ्तर-अफ्तर कहीं नहीं जाऊँगा। आपने आज मेरी सोती हुई पीड़ाको

जगा दिया। अब तो मुझे अपने पापका प्रायश्चित्त अवश्य ही करना होगा।'

उधर कुछ दूरपर कोई गा रहा था—

करो ताअत खुदाकी बस,
वही माबूदे-बरहक है ;
उसी की शाने-यकताई,
जहाँ में आशकारा है।

---

# हैं, जीजाजी आप !

सुरेन्द्र यद्यपि कायस्थ था और राजेन्द्र ब्राह्मण, तथापि दोनों का चौका एक ही था। राजेन्द्रकी मा को यह बात पसन्द न थी। वह नहीं चाहती थी कि राजेन्द्र और सुरेन्द्र एक ही चौकेमें और एक ही थालीमें खायें। यह बात नहीं कि वह सुरेन्द्रसे कुछ जलन रखती हो, किन्तु गाँवके इतिहासमें ऐसी बातें एक विचित्र क्रान्तिके रूपमें देखी जाती हैं। शहरमें चाहे कोई मेहतरके साथ भी खाले, तो चर्चा नहीं होती ; परतु देहातमें यदि कोई किसी अछूतकी लुटियाका पानी भी पीले तो उसकी आफत आ जाती है। पंच बैठते हैं - पञ्चायत होती है और अपराधीको कड़ा दण्ड दिया जाता है। शायद यही कारण था जो राजेन्द्रकी मा को बेचैन किये रहता था। बहुत दिनोंतक तो राजेन्द्रकी मा ने ख़िलाफतका झण्डा उठाया। अपनी दोनों लड़कियों—चञ्चला

और चपलाको तो राजेन्द्रसे भी परहेज करनेको कह दिया। ये दोनों लड़कियाँ मा के सामने तो राजेन्द्रके देनेपर भी उसकी कोई चीज स्वीकार न करती थीं, किन्तु मा के पीछे चारों राजेन्द्र, सुरेन्द्र, चञ्चला और चपला एक साथ ही थालीमें खाया करते थे। इस प्रकार उन चारोंमें बड़ा प्रेम था, चञ्चला और चपला तो सुरेन्द्रको बिलकुल अपना सगा भाई सा समझती थी।

सुरेन्द्र भी उन्हें अपनी सगी बहनोंके समान ही मानता था। चञ्चलाका विवाह हो चुका था। उसका पति एक बड़ा जमींदार था। यों तो देहातमें जिसके पास १००) होते हैं, वह नम्बरदार कहलाता है, परन्तु चञ्चलाका पति बनवीरलाल इसका अपवाद था। वह साधारण जमींदार न था, उसके घरमें दो बन्दूकें थीं। महीनेमें एकबार दारोगाजीको भी अपने घर बुलाकर उनकी खातिरदारी कर दिया करता था। यों तो गाँवके सभी लोगोंपर उसकी धाक थी, पर ठाकुर बाबाकी नजरमें उसकी कोई इज्जत न थी। ठाकुर बाबाके सामने जाते वह स्वयं भी झेंपता था। पारसाल बड़ी बरगदियाके नीचे ठाकुर बाबाने उसे गाँवके किसी ठाकुरकी लड़कीसे छेड़छाड़ करते पकड़ा था। यदि ठाकुर बाबा चाहते, तो ब्राह्मणों और ठाकुरोंमें लाठी चलवा देते। परन्तु नहीं, उन्होंने व्यर्थका रक्तपात कराना पसन्द न किया। उन्होने बनवीरलालको डाँट दिया और लड़कीको भी समझा दिया। परन्तु ठाकुर बाबाने बनवीरको यों ही नहीं जाने दिया। दस बार बनवीरने पैरों पकड़ कर ठाकुर बाबासे माफी माँगी

और ठाकुर बाबाके आज्ञानुसार तीन बार उस ठाकुरकी लड़कीको वहन कहकर पुकारा।

बस, उसी दिनसे ठाकुर बाबाकी दृष्टिमें बनवीर गिर गया। वैसे गाँवमें उसकी काफी इज्जत थी। गाँवका प्रत्येक जन उसको नेकचलन समझता था। इसका कारण एक यह भी था कि ठाकुर बाबा की डाँटके बादसे उसने गाँवकी लड़कियोंको ताकना बिलकुल ही छोड़ दिया था। यह बात नहीं कि वह महात्मा हो गया हो। परन्तु तबसे वह अपना आमोद-प्रमोद दूसरे गाँवों या शहरोंमें जाकर किया करता था जिसकी गाँववालोंको कानों-कान खबर न होती थी।

चञ्चलाको बुलानेके लिये बनवीर लाल राजेन्द्रके घर रक्षा-बन्धनके दिन ही पहुँच गया। सुरेन्द्र और राजेन्द्रकी इतनी घनिष्ठता देखकर वह जलभुन गया। अपनी सासकी बातें सुनकर तो वह और भी आपेसे बाहर हो गया।

चञ्चला बड़ी होनेके कारण सुरेन्द्रका नाम लेती थी किन्तु चपला जब उसे 'दद्दा' कहकर पुकारती तो उसका खून खौल उठता। रक्षाबन्धनके दिन जब चपलाने सुरेन्द्रके हाथमें राखी बाँधी तो वह अपनी स्त्री चञ्चलापर बड़ा ही गुस्सा हुआ। बोला—

"आज कलके लड़कोंकी नस मैं खूब पहचानता हूँ। आज-कलकी लड़कियाँ भी खूब हैं।"

ऊपरसे भाई-बहनका स्वाँग रचते हैं और अन्दर जो कुछ है वह तो है ही। खबरदार! जो तूने सुरेन्द्रके राखी बाँधी।"

'नाथ! यदि आपकी ऐसी आज्ञा है तो मैं भाई सुरेन्द्रके राखी नहीं बाँधूँगी, परन्तु वह तो लड़का नहीं देवता है। आप उसके सम्बन्धमें यह क्या सोचते हैं? उसका चाल-चलन बहुत अच्छा है।'

'ऐसे मैंने बहुत-से देवता इन आँखोंसे देखे हैं। आजकलके लड़के और चालचलन—दो विपरीत वस्तुएँ। चञ्चले! मैं उड़ती चिड़िया पहचानता हूँ। यह तेरा सुरेन्द्र तेरी चपला बहन को भी ले डूबेगा। मुँहमें कालिख न लग जाये, तो कहना। यह तेरा भाई राजेन्द्र, बड़ा ही निकम्मा साबित हुआ। चाचाजी थे तब तो यह डरता भी था। अब तो यह शेर हो गया है शेर। किसीको अपने आगे कुछ समझता ही नहीं। खैर, मुझे क्या, जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा।'

'आप न मालूम ऐसा क्यों सोचते हैं?—चञ्चलाने दुखी होकर कहा।

'मैं इसीलिये ऐसा सोचता हूँ कि मुझे उस ग़रीब चपला पर तरस आता है। वह कहींकी भी न रहेगी। उससे कोई खान्दानी ब्राह्मण विवाह न करेगा। चाचीजी भी कुछ नहीं सोचतीं। जवान तो हो गयी है, फिर भी विवाहकी कोई बात नहीं। अब उसका बाहर पढ़ने जाना भी मुझे खतरेसे खाली नहीं दीखता। आखिर इन्हें सूझा क्या है?'

'चपलाको पढ़नेका बड़ा शौक है—मालूम भी है कुछ—क्लासमें सबसे अच्छी चलती है। हमेशा प्रथम आती है।'

'भाड़में जाय वह प्रथम आना। यहाँ इज्जत बचाना मुश्किल है और वहां प्रथम आना सूझ रहा है। न मालूम यह दुष्ट राजेन्द्र उसकी क्या गति करेगा ?'

'यदि आप ऐसा समझते हैं, तो राजेन्द्र भाईको बुलाकर समझा दीजिये। शायद वे इसे अपनी भूल समझते हों।'

'लल्ला है न बड़ा वह, जो भूल नहीं समझता है ! उस रोज तो मुझसे यों ही अकड़ गया। बेटाकी आँखें तो तब खुलेंगी, जब ब्राह्मण लोग उन्हें जाति-बाहर कर देंगे। यदि मैं चाहूँ तो चपलाकी शादी ब्राह्मणोंमें कहीं भी न होने दूँ। मेरे मुँहसे सुरेन्द्र और चपलाकी कुछ बात निकलने भरकी देर है।'

'आप ये कैसी बातें करते हैं ? क्या आपको ये बातें शोभा देती हैं ?'—

चञ्चलाके मुँहसे इतना निकला ही था कि राजेन्द्र खिल-खिलाता हुआ वहाँ आ पहुँचा और बोला—'भाई साहब ! अब चुप क्यों हो गये ? न होने दीजिये चपलाकी शादी ब्राह्मणोंमें—देखूँ, कितनी दम है आपमें ? बहनको क्या सुना रहे हैं ? मुझसे कहिये जो बात कहनी हो।'

'राजेन्द्र ! इन बातोंका नतीजा सदैव बुरा होता है। मैं कहता हूँ, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। चपलाको भी मेरे साथ कर दो। थोड़े दिन वहीं रहेगी।'—बनवीरलालने गम्भीर होकर कहा।

'हरगिज़ नहीं। चपला अपनी पढ़ाई छोड़कर कहीं नहीं जा सकती। आपसे जो कुछ करते बने, कीजिए। राजेन्द्रको इसकी परवा नहीं।' कहकर राजेन्द्र घृणाकी हँसी हँसता हुआ बाहर चला गया।

२

सचमुच राजेन्द्रके बहनोई बनवीरलालने चपला और सुरेन्द्र को बदनाम करनेमें कुछ उठा नहीं रखा। थोड़े ही दिनमें राजेन्द्र को गाँव-आनगाँवके लोग बुरी नजरसे देखने लगे। राजेन्द्रको भी अपने गाँवसे घृणा हो गयी। मा के मर जानेके बाद तो उसे उस गाँवसे विरक्ति हो गयी। उसकी दुनिया केवल दो में सीमित थी—और वे दो थे—सुरेन्द्र और चपला। वे ही दोनों थे। उसके जीवनके आधार। यदि वे न होते तो अबतक गाँववालोंकी बातें सुनकर वह पागल हो गया होता। किन्तु नहीं, उन दोनोंके ही कारण उसने बड़ी शान्तिसे काम लिया? दूरदर्शिता उसने अपनी सङ्गिनी बनायी। उसने, बिना किसीको बतलाये सुरेन्द्र और चपलाको लेकर उस गाँव तकको छोड़ दिया। सुरेन्द्रने भी अपने राजेन्द्रके कारण अपने घरबारको छोड़ा। सुरेन्द्रके माँ बाप तो बचपनमें ही मर गये थे। अपने चाचाकी रोटियोंपर फटकारें सुन-सुनकर वह रहता था उसने भी राजेन्द्रके साथ जाकर झञ्झटोंसे मुक्ति पाई।

अपने गाँवसे लगभग २०० मिलकी दूरीपर रूपनगरमें उन दोनोंने चपलाका विवाह एक सम्भ्रान्त विप्रकुलमें कर दिया!

चपलाका पति वास्तवमें देवता था। कुछ दिन वहां ठहरकर राजेन्द्र तथा सुरेन्द्रने बम्बईके लिये प्रस्थान किया।

बम्बईमें पहले तो उन लोगोंको बड़ी मुसीबतें उठानी पड़ी। लेकिन पढ़े लिखे और परिश्रमशील होनेके कारण शीघ्र ही उन्होंने उनपर विजय पा ली। वे शीघ्र ही फौजमें उच्च पदोंको पा गये। तीन सालमें उन दोनोंने बड़ी उन्नति की। राजेन्द्र अब लेफ्टीनेण्ट हो गया और सुरेन्द्र सेकेण्ड लेफ्टीनेण्ट। दोनों एक ही बङ्गलेमें रहते। बङ्गला बड़ा ही आलीशान था। दोनों अभीतक अविवाहित थे।

सुरेन्द्र राजेन्द्रसे बहुत कहता—"भाई साहब अब शादी कर लो, भाभी देखनेकी इच्छा होती है।"

परन्तु राजेन्द्र उस बातको हँसकर टाल देता और कहता—"फिर शायद सुरेन्द्र भैयाका मैं इतना ध्यान न रख सकूँ।'

ठीक सवा तीन साल बाद राजेन्द्र और सुरेन्द्र दो महीनेकी छुट्टी लेकर चपला और चञ्चलाको देखनेके लिए बम्बईसे रूपनगर पहुँचे। चपला अपने बिछुड़े भाईयोंसे बिलकुल निराश हो बैठी थी। किसीने यह भी कह दिया था कि राजेन्द्र और सुरेन्द्र लड़ाईमें मारे गये। यदि उसे यह मालूम होता कि उसके दोनों भाई जीवित हैं और आज उसके घर आ भी जायेंगे तो वह कल आनगाँवके जमींदारसे, जिसने हालमें ही गाँव खरीदा था, डर क्यों जाती? वह अपने पतिको बेगारपर भी नहीं जाने देती।

वह सोचती—'अब ज़मींदारको सबेरे ही बतला दूँगी कि मैं कितने बड़े अफसरोंकी बहन हूँ। कम्बख्त! मेरी इज्जत अपने चाँदीके रुपयोंसे खरीदना चाहता है। उन्हें न मालूम आज रातको किस कामपर कहाँ भेज दिया! मैं डरसे मरो जा रही थी—ओह कितनी अन्धेरी रात है! अच्छा हुआ, भैया आ गये। ओह, भैयाके पास तो पिस्तौल भी है। अब जमींदार देखें, हमारा क्या कर लेगा?'

उस रातको यद्यपि चपलाने बहुत चाहा कि भाइयोंको कुछ ताजा-ताजा बनाकर खिलायें, किन्तु राजेन्द्र और सुरेन्द्रने उसे कुछ न बनाने दिया। काफी मिठाइयाँ साथ लाये थे। तीनोंने मिलकर खाईं। दोनोंको अपने बहनोईकी अनुपस्थिति बहुत खली। सुरेन्द्र तो गुस्सा भी हुआ। बोला—'रातबिरात उन्हें घर अकेला नहीं छोड़ना चाहिये।'

खाना खा-पीकर फिर वे तीनों सोने गये। राजेन्द्र और चपलाको तो गहरी नींद आ गयी, लेकिन सुरेन्द्र किसी उधेड़बुनमें आँखें मीचे चुपचाप पड़ा रहा। ज़रा देरमें ही उसने मकानकी छतपर 'धम-धम'की आवाज सुनी। वह चौकन्ना हो गया, उसने पिस्तौल निकाली - परन्तु चुपचाप रहा। उन मनुष्योंमेंसे एककी आवाज स्पष्टतया सुनायी दी—'हाय राम! आज मैं अपनी इच्छा पूरी करूँगा। अरे रामसिंहाकी मेहरुआ उठ, देख तेरी किस्मत कितनी अच्छी है। गाँवका जमीन्दार खुद

मैं ही तेरे यहाँ आया हूँ। अब तो तू रानी बन जायेगी रानी ! डाकू समझकर कहीं शोर मत मचइयो।'

अब तो सुरेन्द्र जल-भुन गया। एकाएक बिजलीकी तरह तड़पकर खड़ा हो गया और बोला—'कुत्तो ! उतरो। एकको भी ज़िन्दा नहीं जाने दूँगा। हरामजादो !'

ज़मीन्दारने गरजकर कहा—"अबे तू कौन है ?"

दूसरा बोल उठा—'मार दो सालेको, होगा कोई इसीका यार।'

'ठाँय'—पिस्तौल चली।

पिस्तौल आगेवाले आदमीकी जाँघमें लगी—वह धड़ामसे गिर पड़ा। भगदड़ मच गयी। इधर पिस्तौलकी आवाज़ने राजेन्द्र और चपलाको भी जगा दिया। वे दौड़े हुए छतपर गये। देखा—'सुरेन्द्र पिस्तौल लिए मस्त हाथीकी तरह झूमता हुआ टहल रहा है। एक आदमी भी छतपर पड़ा कराह रहा है।'

राजेन्द्रने उस आदमीको टार्चसे देखा—मुँहपर कपड़ा बँधा था। घावसे खून बह रहा था।

सुरेन्द्रने राजेन्द्र और चपलाको सब बातें संक्षेपमें समझा दीं। चपला बोली—"भाई ! आजकल यही तो गाँवका जमींदार है। पुराने जमींदार बड़े अच्छे थे। गाँवकी हरएक स्त्रीको अपनी बहन-बिटियाके समान मानते थे। जबसे इसने यह गाँव खरीदा, तबसे भली स्त्रियोंकी इज्जत खतरेमें है। भाई ! इसी दुष्टने आज छलसे उनको कहीं भेज दिया। मुझे कितने ही दिनसे यह तरह-

तरहके प्रलोभन दे रहा है। भाई साहब, यह बदमाश तो मार डालने योग्य है।'

राजेन्द्रने कहा—'क्यों बे उल्लूके पट्ठे! जमींदार होकर गाँव-वालोंपर ज्यादती करता है। अबे साले! अपना मुँह तो दिखा!'

'हरामजादेने मुँह भी खूब बाँधा है। मनमें आता है कि एक पिस्तौल इसके सीनेपर और दाग़ दूँ। बता उल्लू! तेरे वे साथी कहाँ गए? भाग गए, नहीं तो उन्हें भी भूनकर रख देता। कल थानेमें उनका नाम ठीक-ठीक बतलाएगा या नहीं? बोल… '

—सुरेन्द्रने कहा—

'सुरेन्द्र, मेरी राय है कि इस सालेका खात्मा ही कर दिया जाय। डकैतीमें केस चलेगा। घर आये डाकुओंके मार देनेमें श्रेय है।'—राजेन्द्रने कहा।

'तो क्या चला दूँ पिस्तौल इसके सीनेपर?'—सुरेन्द्रने पूछा।

राजेन्द्रके 'हाँ' या 'न' कहनेसे पहले ही वह घायल व्यक्ति चिल्ला उठा—'भाई राजेन्द्र! अब पिस्तौल मत चलवाना। अपनी बहन चञ्चलाको अपने ही हाथों विधवा मत बनाओ। मुझे माफ़ करो…देखो, मैं तुम्हारा जीजा बनवीर लाल हूँ। बहन चपला! आज मेरी आँखें खुलीं—मैं अबतक तुझे न पहचान सका! भाई सुरेन्द्र! भाई राजेन्द्र! अब तुम दोनों मेरी छातीसे लग जाओ और जूते लेकर मेरा सिर कूट डालो। बहन! मुझे माफ़ करना। मुझसे ग़लती हुई।'

बस फिर बनवीरने दाढ़ीपरका वस्त्र उतारकर फेंक दिया।

'हैं! जीजाजी आप!!' राजेन्द्र चौंक पड़ा। सुरेन्द्र और चपलाके आश्चर्यका ठिकाना न रहा।

---

# विधि-विधान

उस रोज सुखरामकी खुशीका ठिकाना न था। वह रासलीला में अपने गाँववालोंके साथ बैठा अपनी मूँछोंपर ताव दे रहा था। गाँववाले कहते—वाह नम्बरदारजी! आपकी ही दम पर हमलोग मथुराके सुघर रासधारियोंको देख सके। इस गाँवका नसीब सचमुच बड़ा अच्छा है।'

सुखराम बोला—'अरे भाई! सब भाग्यका खेल है। कल तक जिस खेतमें दस मनकी फसल भी नहीं होती थी आज उसीमें सौ-सौ मनकी फसल होती है। हमारे बाप-दादे भगवानके भरोसे रहे और दस मनसे अधिक न काट सके। हमने भगवानको ताकमें बैठा दिया। अपनी भुजाओंपर भरोसा किया और खेतको खूब गहरा जोतवा डाला, सो फसल तुम अब देखते ही हो। यह राग-रङ्ग, यह शान-शौकत, यह तान-बान, ये खूबसूरत-खूबसूरत चेहरे सब इसीकी बदौलत हैं। कनकऊ साहबके भी दरवाजेपर हाथी नहीं है। लेकिन मेरे तो एककी कौन कहे, दो दो हैं। कनकऊ साहबने अपनी बिटियाके ब्याहमें पाँच हजारसे एक पाई भी अधिक न खर्चकी, और मैंने

अपने बेटेके ब्याहमें ही पन्द्रह हजार खर्च किये। याद है न? बनारस और दिल्लीकी तवायफ़ोंने भी कैसा ग़जब ढाया था। अगर जिन्दगी रही तो छुटकऊके ब्याह में दूर दूरकी रंडियाँ बुलाऊँगा। देखना, क्या बहार आती है! क्या आसपास है कोई मेरे जैसा किसान?'

'यह ठीक है नम्बरदारजी! लेकिन इसे भी भगवानकी ही कृपा समझनी चाहिए। मैं लगभग ५५ साल का हो चला। मैंने अबतक किसी किसानको रत्नपुरमें इतना फूलते-फलते नहीं देखा। तवायफ़ोंकी बात जाने दीजिए। उनका न आना ही अच्छा। कनकऊके ब्याहमें आईं तो अपने साथ क़यामत लाईं। यह गाँव पुलिसके बड़े-बड़े अफ़सरोंका हेडक्वार्टर बन गया। बेटा! घमंड करना ठीक नहीं—उनमेंसे एक बुढ्ढेने कहा।

'बाबा! यह आप क्या कहते हैं; अब भी न घमंड करूँगा तो कब करूँगा? मैं भगवानको नहीं मानता और न मानूँगा ही। परसों आप दया धर्मकी नसीहत दे रहे थे—नरसों आप सात्विक दानकी महिमाका पाठ पढ़ा रहे थे। हमें दान-धर्मसे क्या मतलब? दान-धर्म वे लोग करते हैं जिन्हें किसी वस्तु-प्राप्तिकी इच्छा होती है। मेरे पास तो सब कुछ है। मेरे जवान-जवान बेटे हैं और सभी पढ़े-लिखे हैं। बहुएँ भी लक्ष्मी सी हैं। आलीशान मकान है। आखिर किस बातकी कमी है जो मैं दान-पुण्य करूँ। माना कि तुम बड़े धर्मात्मा हो—लेकिन

तुम्हारे परिवारकी औरतें आती मेरे ही यहाँ हैं—नमक तेल माँगने।'—सुखरामने आपेसे बाहर होकर कहा।

'बेटा ! बुरा क्यों मानते हो ? मेरा है ही कौन ? यदि वे औरतें '

बीचमें ही गाँवके पण्डितने सुखरामको क्रुद्ध देख, पचपन सालके बुड्ढे झुनकूकी बात काट दी और कहा—"ओ बुढ़ऊ बाबा ! क्या बकवास करते हो ! यदि रास नहीं देखना है, तो चले जाओ। नम्बरदारजी ! आप भी किसकी बातें सुन रहे हैं। देखिये वही लड़का जिसे कल आपनें चौपालमें बुलाया था, स्त्रीका कैसा स्वाङ्ग भरकर आया है ! कौन कह सकता है कि यह वही लड़का है। कैसी रूपवती युवती है। स्त्रीका रूप इसे बहुत फबता है।'

सुखराम उधर देखने लगा। स्त्रीरूपधारी वह लड़का बड़ी नज़ाकतसे अपने अंगोंका संचालन-परिचालन करते हुए गा उठा :—

'जोबन उमड़ाए, नयन रसियाए,
ख़बर बिसराए, सजन परदेशी,
सजन परदेशी !
जिया लहराए, सजन परदेशी।
बहुत दिन बीते, विरह-विष पीते
करत मन 'हाय', सजन परदेशी !
सजन परदेशी !

'वाह वाह, कमाल-कमाल' आदिकी आवाजोंसे आसमान गूँज उठा।

उसी समय सुखरामने देखा, बुड्ढा चुपचाप उठा और बाहर चला गया।

२

ठीक एक साल बाद—

देशमें त्राहि-त्राहि मची थी। महामारियोंका प्रलयङ्कर प्रकोप किसी महाभयङ्कर दानवके समान अट्टहास करता हुआ बढ़ा आरहा था। हैज़ेने गाँवके गाँव उजाड़ दिये। बड़े-बड़े खानदान तबाह कर दिए। लाशोंके ढेर लग गए—उन्हें मरघट पहुँचाने तकको आदमी नहीं मिलते थे। सड़कोंपर पड़े शवोंसे कौवे, कुत्ते, सियार, चील और गिद्ध महाभोजका उत्सव मना रहे थे। सब तरफसे सड़े हुए मांसकी बदबू आती थी।

पानी नहीं बरसा था। फसलें बरबाद हो गयी थीं। लोग दाने-दानेको तरस रहे थे। देशमें भारी अकाल पड़ा था। भूखसे तड़प तड़प कर कितने ही बेचारोंके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। स्त्रियोंकी इज्जत-आबरू दो दो आनेमें बिक रही थी। कई जगह तो पेटके दोज़ख़की धधकती हुई भट्ठीको बुझानेके लिए कई स्त्रियोंने अपने बच्चोंको ही गला घोटकर मार डाला। कितने ही आदमियोंने अपने बीबी-बच्चोंको मार कर गङ्गामें डूबकर जान दे दी। कितने ही आदमी लाजके मारे घरके भीतर ही फांसी लगा-लगाकर मर गए। देहातकी कौन कहे, बड़े बड़े शहरोंमें

भी, डकैतियोंका बोलबाला था। देहातके रईसोंके लिए तो यह खुदाई मार थी यदि वे! बीमारीसे बचे, तो डाकुओंसे मरे।

कई जगह भूकम्प भी आए। नदियोंमें भी बाढ़ें आयीं। भीषण जनसंहार हुआ, और बाढ़ तथा बीमारीमें रत्नपुर तो बिल्कुल तबाह हो गया। वहाँके निवासियोंने भागकर दूसरे प्रान्तोंकी शरण ली। वृद्ध झुनकू भागकर पटना चला आया। उसके लिए जैसा रत्नपुर वैसा पटना। आगे नाथ, न पीछे पगहा। अकेली जान। उसने पटनेमें एक मारवाड़ी सज्जनके यहाँ ड्योढ़ीपर बैठनेकी नौकरी कर ली।

३

सात महीने बाद—

एक दिन झुनकू रोजकी तरह गङ्गा-स्नान कर वापस आ रहा था। रास्तेमें उसने कुछ भीड़ देखी; वह ठहर गया। भीड़की तरफ बढ़ा। देखा, कुछ लोग एक आदमीको, जो देखनेमें पागल प्रतीत होता है, पकड़े हुए हैं। वे लोग उस आदमीसे कह रहे थे—'साले! हम तुझे मार डालेंगे; ग़ाली बकता है।'

पागल कह रहा था—'मैं किसी सालेको गाली नहीं देता।'

झुनकू आगे बढ़ा, पागलको ग़ौरसे देखने लगा। कुछ लोग बोल उठे—'भगतजी! यह आपको तो गाली नहीं देता?'

झुनकूको देखते ही पागल चिल्ला उठा—'तुम साले झुनकू हो। तुम्हींने साले, हमारे घरमें हैजा फैलाकर हमारे बीबी-बच्चों को खा लिया। तुम्हींने साले, नदीसे कहकर हमारे घरको मटि-

यामेट कर दिया। देख लो, साले! मैं आज भी नम्बरदार सुखराम हूँ। मैं आज भी रासलीला देखता हूँ—बनारस जाता हूँ और तुम साले चोट्टे हो।'

झुनकू आँखें फाड़-फाड़कर उसे देखने लगा। उसने कहा—'भाई सुखराम! पागल मत बनो। जो होना था, वह हो गया। अब भगवान्‌की याद करो। घमण्डका नतीजा हमेशा बुरा होता है। चलो, मेरे साथ रहो। मैं यहाँ अच्छी नौकरीपर हूँ।'

'चुप साले झुनकू! भगवानको याद कर तू! नौकरी कर तू! मैं तो बादशाह हूँ। बादशाद किसी सालेकी नौकरी नहीं करता—वह बनारस जाता है, वह रासलीला देखता है।' कहकर पागल सुखराम भागा और बेतहाशा भागा।

झुनकूने उसे पकड़नेकी बहुत कोशिश की, पर सब बेकार।

झुनकूकी आँखोंमें आँसू आ गए, और उसके मुँहसे निकल पड़ा—'विधि-विधान!'

---

# फलोंकी टोकरी

कलकत्तेसे चलकर ट्रेन लगभग ११ घण्टेमें ग्वालन्दू पहुँची। ग्वालन्दूसे मुझे चाँदपुरके लिये जहाज पकड़ना था। एक कुलीसे सामान उठवाकर मैं जहाजकी ओर बढ़ा। मेरी खुशीका ठिकाना न रहा, जब मैंने जहाज बिलकुल खाली देखा। यद्यपि मेरे पास टिकट इण्टरका था, परन्तु मैंने इण्टरकी बेंचोंकी अपेक्षा थर्डका

डेक ज्यादा अच्छा और आरामदेह समझा। मैंने बड़े इतमी-नानसे अपना विस्तर वहाँ फैला दिया। फिर जरा देर इधर-उधर घूमा। चारों तरफ पानी ही पानी दिखायी दिया। मुझे भ्रम हुआ कि शायद यह जहाज किसी समुद्रमें खड़ा है। भूगोल का विद्यार्थी तो था नहीं, जो सब सागरों और नदियोंके नाम रटे पड़े हों। स्कूलमें तो मैं भूगोलके नामसे घबराता था! कुछ भूगोल कड़ा होता ही है और कुछ मेरे मास्टर साहबकी सूरतने उसे कड़ा बना दिया था। न मालूम मास्टर साहबकी पैदाइश मुहर्रमके दिनोंकी थी क्या? हर वक्त लड़कोंको काट खानेको तैयार बैठे रहते और यही कारण था कि लड़के भूगोल छोड़-छोड़-कर इतिहास ले रहे थे। किस्से-कहानियोंसे मुझे शुरूसे ही दिलचस्पी रही है। अब आप सोच सकते हैं, मैं इतिहासका विद्यार्थी—मुझे समुद्र और नदियों से क्या मतलब? मेरे दिलमें यह जाननेकी बड़ी इच्छा हुई कि यह कौन-सा समुद्र है। मैने एक सज्जनसे जो वहाँ टहल रहे थे, बड़ी नम्रतासे पूछा—'भाई साहब! क्या आप यह बतलानेकी कृपा करेंगे कि हमारा जहाज कौन-से समुद्र में खड़ा है?'

वे बोले—'एटा कोनो महासमुद्र, किन्तु इहार नाम आमी जानी न।'

मैं बङ्गलाका विद्यार्थी तो कभी नहीं रहा, परन्तु मेरे मित्र बङ्गाली जरूर रहे हैं। मेरी कुछ महिला मित्रोंने मुझपर बङ्गला सीखनेके लिये बड़ा ही जोर डाला। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

लिखित 'बर्णपरिचय' एकबार नहीं कितनी बार खरीदी—लेकिन मैं बड़ा औला-मौला हूँ। कोई काम नियमानुसार करनेसे शायद खुदा मियाँने मुझे मना कर दिया है। मैंने थोड़ी देर बाद उनके वाक्यका अर्थ तो लगा लिया। किन्तु फिर उनसे बोलनेका साहस न हुआ—लेकिन बोलनेमें पीछा रहना मेरे स्वभावके विपरीत है। वाद-विवाद प्रतियोगितामें कितनी ही बार विजयी हो चुका हूँ। गलेमें तिरछा दुपट्टा डाल कितनी बार रङ्गमञ्चसे नेताओंकी तरह जनताके सामने लेक्चर भी दे चुका हूँ और हाँ, कवि-सम्मेलनमें तो मैं इस वाकशक्तिसे ही प्रिंसिपल-प्रोफेसरसे लेकर कालेजके कमजोर-से-कमजोर छात्र तकको हँसनेके लिए वाध्य कर देता हूँ। और तो और साग-तरकारी बेचनेवाली कुखड़िनें भी जानती हैं कि बाबू बहुत बोलनेवाला जीव है और इसीलिये शायद वे मुझे सब्जी दूसरेसे पैसा-धेला कममें ही देती हैं। अतः मैंने भी आश्चर्य प्रकट करते हुए उन सज्जनसे कहा—'आप यहाँके निवासी होते हुए भी इस समुद्रका नाम नही जानते !'

वे बोले—'आमी एकदम जानी न।'

इतने ही में एक और महाशय, जो अंधेरेमें खड़े मेरी फलोंसे भरी टोकरीकी ओर गृद्ध-दृष्टिसे देख रहे थे, आगे आकर बोले—भाई ! हाम ईठोका नाम बोलने सकता हाय, यदि आप हमारा मुखको मिष्टी करायेगा।'

बस फिर मेरी टोकरीकी ओर लोलुप दृष्टिसे ताकने लगे।

मैंने कहा—'भाई, खानेके लिये वैसे तो मैं आपको कुछ फल दे देता – परन्तु ये फल तो मेरी श्रीमतीजीने अपनी एक सहेलीको देनेके लिये भेजे हैं। उन्होंने मुझसे यह भी कह दिया है कि मैं भी अपने खानेके लिये इसमेंसे फल न निकालूँ—यदि खानेकी इच्छा हो तो बाजारसे खरीद लूँ। ऐसी हालतमें भाई, मैं ये फल आपको कैसे दे सकता हूँ ?'

बस, फिर वे सज्जन न मालूम क्या सोचकर बिना एक शब्द कहे जहाजके निचले भागमें चले गये। मैं भी नाम जाननेके झगड़ेको छोड़ अपने बिस्तरपर पैर फैलाकर लेट गया। कुछ सामान मैंने अपने सिरहाने और कुछ पैताने बड़ी होशियारीसे रख लिया।

आँख लगे आध घण्टे भी न हुआ था कि मैं एक स्वप्न देखने लगा। स्वप्नमें वे ही सज्जन, जो मुझसे बात करते-करते मेरी बातका बिना उत्तर दिये ही जहाजके निचले भागमें चले गये थे, मेरी फलोंसे भरी टोकरी लिये भागे जा रहे थे। मैं जोरसे चिल्ला पड़ा—'अबे साले चोर, उल्लूके पट्ठे, मेरी चीज तू नहीं ले सकता—ठहर तो साले—अभी तेरा खून करता हूँ।'

यह मैं इतने जोरसे चिल्लाया कि मेरी नींद खुल गयी। इधर मैंने देखा – मेरे पाससे एक टिकिट कलक्टर भागा जा रहा है।

जरा देरमें वह दो बन्दूकधारी सिपाहियोंको लेकर लौट आया और मेरी तरफ इशारा कर उनसे बोला— बड़ा खतरनाक

आदमी हाय। चोर शाले हरामी कहटा और खून करना माँगटा। इसको पकड़ लो।'

मैं साहबको देखते ही निहायत अदबसे खड़ा हो गया। मैंने कहा—'माफ कीजिये—आपको मेरी तरफसे गलतफहमी हुई। मैं उस वक्त एक स्वप्न देख रहा था।'

'हम ए कुच नहीं जानटा। हम टिकिट माँगटा, टुम खून करना मांगटा। हम अगर नहीं भागटा टो टुम खून कर डेटा।'

अब तो मैंने सोचा—यह कम्बख्त यों नहीं मानेगा। अब मुझे अंग्रेजी बोलनी ही पड़ेगी। मैंने अपना कुछ ऐसा नियम बना रखा है कि मैं अंग्रेजीका व्यवहार बहुत ही कम किया करता हूँ और अंग्रेजोंसे ज्यादातर मैं अपनी मातृभाषा हिन्दीमें ही बातचीत किया करता हूँ। कारण, जब अंग्रेज हिन्दुस्तान में आकर एक हिन्दुस्तानीसे बातचीत करते समय भी अपनी मातृभाषा अंग्रेजी नहीं छोड़ते तो मैं ही क्यों अपनी मातृभाषाको छोड़ने लगा? अगर उन्हें हमें और हमारे ग्रन्थोंको समझना है तो हमारी मातृभाषा सीखें। प्यासा कुएँके पास जाता है कुआँ प्यासेके पास नहीं। परन्तु यहाँ तो मामला ही टेढ़ा था। अगर मैं जरा भी देर करता तो मुझे जरूर ही वे तीनों पकड़ ले जाते। अतः मैंने साहबसे अंग्रेजीमें गिटपिट करना शुरू कर दिया। बस फिर तो साहब इतना खुश हुआ कि वह मेरा दोस्त हो गया और खूब ही खिलखिलाकर हँसा।

अपनी दोस्तीको स्थायी रूप देनेके लिये मैंने उसी टोकरीसे कुछ फल निकाले और साहबको भेंट किये। साहबने बड़ी खुशी से उन्हें लिया, फिर तो हम दोनों बहुत देरतक बातें करते रहे।

साहब से हमें पता चला कि हमारा जहाज समुद्रमें नहीं बल्कि नदियोंमें खड़ा है। पद्मा, धुलेश्वरी, मेघना, ब्रह्मपुत्र आदि नदियोंके एक साथ मिलकर बहनेसे ऐसा मालूम होता है मानो यह कोई बड़ा समुद्र हो। फिर इन नदियोंका पाट कहीं-कहीं तो ग्यारह-ग्यारह मील तक हो जाता है। मुझे उनसे यह भी मालूम हुआ कि हमारा जहाज यहांसे आठ घण्टे बाद यानी दो बजे खुलेगा और लगभग रातके दस बजे चांदपुर पहुँचेगा।

इस समय प्राचीमें बालारुण बड़े ही भव्य प्रतीत हो रहे थे। अपनी मनोहर अरुणिमाको प्रकृतिकी सभी वस्तुओंमें भरकर उन्हें स्वर्णसे भी अधिक सुन्दर, देदीप्यमान और मनोमुग्धकारी बना रहे थे। नदियोंके किनारे-किनारे रम्भाके बनके बन बड़े ही सुन्दर दृष्टिगोचर होते थे। ऐसा मालूम पड़ता, मानो रम्भा-सैन्य क्रान्ति करनेपर तुल गया है और सुसज्जित हो आगे बढ़ने के लिये प्रस्तुत है। जब उनके पत्तोंपर भगवानभुवन-भास्करकी किरणें पड़ती थीं तो मनमें कितने ही प्रकारके भाव उदय होते थे। नदियां हहर-हहरकर बह रही थीं। जल और थल सभी आनन्द-विभोर थे। मालूम पड़ता था नन्दन-निकुञ्जका सौंदर्य यहां बिखर पड़ा है। ताड़, नारियल और सुपारी के वृक्षोंका समूह अपना मस्तक ऊँचा किये किसी स्वाभिमानी प्रहरीके समान

खड़ा था। विविध प्रकारके पक्षियोंका कलकूजन हृदय में नयी-नयी भावनाएँ और उमंगे भर रहा था। ऐसा प्रतीत होता था मानो यहाँ प्रकृतिपर सोलहो शृङ्गार किये थिरक रही हो।

मैं प्रकृतिकी शोभा देखनेमें इतना तल्लीन हो गया कि मुझे यह पता ही नहीं चला कि अब तक ११ बज चुके हैं। एक सज्जन जो मुझे बड़ी देरसे देख रहे थे, बोले—'क्या आप कवि हैं—या फिलासफर ? मैं लगभग ६ बजे सवेरेसे आपको ऐसे ही बैठा देख रहा हूँ। क्या आप यहाँ खाना-वाना नहीं खायेंगे ? चाँदपुर तक आपको भात-माछ नहीं मिलेगा।'

मैंने कहा—'भाई! मैं भात-माछ तो खाता ही नहीं।'

'तो फिर आप क्या खाते हैं ?'—उन्होंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

'आप इतना आश्चर्य क्यों करते हैं ? कोई अनोखी चीज मैं खाता हूँ, यह बात नहीं। मैं भात-माछके बजाय रोटी-दाल और साग-तरकारी खाता हूँ।'

'अरे भाई, ये चीजें तो अब आपको और भी नहीं मिलेंगी। अभी खाना हो तो खा लीजिये—नहीं तो फिर आपको १० बजे रात तक टापना पड़ेगा – परन्तु हाँ, आपके पास तो फलोंसे भरी टोकरी है। आप अपनी भूख फलोंसे मिटा सकते हैं।'

'शुक्रिया भाई! आपने खूब बताया। मैं अभी उतरकर खाना-वाना खाए लेता हूँ। फलोंकी टोकरी मेरे पास है जरूर—परन्तु मैं इसका रक्षक-मात्र हूँ।'

'क्यों भाई! ऐसा क्यों?'

'असल बात यह है कि कुमिल्लामें श्रीमतीजीकी एक दोस्त रहती हैं—मिसेज चटर्जी। उनके लिए ही मेरी श्रीमतीजीने यह फलोंसे भरी टोकरी भेजी है। इसमें से मुझे एक फल खानेका भी हुक्म नहीं।'

'तो क्या मि० चटर्जी आपके मित्र नहीं?'

'अरे भाई! मेरा परिचय तो केवल मिसेज चटर्जी और उनके बच्चोंसे ही है—वह भी उस समय हुआ था, जब मिसेज चटर्जी लखनऊ—अपने भाईके घर आई थीं। मि० चटर्जी छुट्टी न पा सकनेके कारण लखनऊ न आ सके थे।'

'तो आपको घरका पता लगानेमें बड़ी दिक्कत होगी।'

'जी नहीं, इस मुसीबतका सामना तो मैं अपने कप्तान मित्र की सहायतासे सहूलियतसे कर लूँगा। पहले मैं कप्तान साहबके यहाँ जाऊँगा—फिर मिसेज चटर्जीके यहाँ।'

उनके उत्तरकी प्रतीक्षा किए बिना ही मैंने चायवालेको आवाज दी। चाय और डबल रोटी भरपेट खाकर मैं फिर निश्चिन्त हो गया। चार रसगुल्ले और चार आनेके केले भी मैंने खाये।

उधर दो का घण्टा बजा और इधर जहाज भी विचित्र प्रकार की आवाज कर धीरे-धीरे चला। जहाजके पहिये अपार जल-राशिको बड़ी विचित्रतासे काट रहे थे। मैं लगातार घण्टों उसे देखता रहा। रास्तेमें एक जगह हमारा जहाज रुका, किन्तु तटपर नहीं, तटसे बहुत दूर। मुझे कुछ आदमी चिल्लाते हुए

जहांजकी ओर आते दिखाई दिये। मैंने समझा शायद डाकुओंका कोई हमला हुआ है। मैं अपना बेंत उठाने दौड़ा और अपना सब सामान इकट्ठा करने लगा। यह देखकर कि जहाजके सभी सज्जन हो हल्ला मचा रहे हैं और बड़े गौरसे देख रहे हैं और डोंगियोंकी ओर बड़े गौरसे देख रहे हैं, मैं और भी घबरा गया। मुझे घबराया देख एक साहब बोले—'क्या आपको यहां उतरना है ?'

मैंने कहा—'यहाँ डाकुओं में'

वे बोले—'आपकी बात मैंने नहीं समझी।

फिर वे डोंगियोंकी तरफ उचक उचककर देखने लगे।

मैंने कहा—'क्या आपके पास कोई डण्डा नहीं है ?'

उन्होंने पूछा—'डण्डा किस लिए ?'

मैं बोला—'वाह ! आप भी खूब हैं—डाकुओंका हमला हो रहा है और आप निश्चिन्त बैठे हैं। बड़े भयानक डाकू मालूम पड़ते हैं—इतनी छोटी छोटी डोंगियोंके ही बलपर इतने बड़े समुद्रमें घुस आये। अरे आप हँसते हैं, होशियार हो जाइये—अपना सामान सँभालिये—समुद्री डाकू बड़े खतरनाक होते हैं ?'

वे बोले—आप पागल तो नहीं हैं ? ये डोंगियाँ डाकुओंकी नहीं बल्कि रसगुल्लेवालोंकी है।'

'हैं, तो क्या वे डाकू नहीं—रसगुल्लेवाले हैं ? नहीं, नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। यदि वे रसगुल्लेवाले होते तो जहाजमें

इतना हो हल्ला क्यों मचता और लोग घबरायेसे इधर-उधर क्यों दौड़ते ?'

'अरे भाई ! आप भी अजीब आदमी हैं। यहाँ जहाज थोड़ी देर ठहरता है। सबको रसगुल्ले लेनेकी जल्दी पड़ी है, इसी लिये ऐसा हो रहा है। मालूम पड़ता है, आप यू० पी० की ओरके हैं।'

इतनेमें डोंगियाँ जहाजसे आकर लग गयीं। मैंने देखा—सचमुच रसगुल्ले ही थे—कुछ सन्देश भी थे। मैं अपने ऊपर झल्ला उठा। बोला—'आखिर ये कम्बख्त इतना चिल्लाते क्यों हैं ?'—पर सच पूछिये तो मैं वास्तवमें फिर बड़ा झेंपा।

दस बजे रातको मेरा जहाज चाँदपुर पहुँचा। मैं जल्दीसे कुलीको बुलाने नीचे गया। जल्दी इसलिये थी कि चाँदपुरसे मुझे चटगाँव मेल पकड़नी थी, और यदि कोई पहले न पहुँचे तो गाड़ीमें जगह मिलनी बहुत मुश्किल हो जाती है।

मैं आठ आनेमें एक कुलीको तय करके ऊपर लाया। ऊपर आकर देखता हूँ कि मेरी फलोंसे भरी टोकरी नदारद। मैं बड़ा परेशान हुआ, इधर-ऊधर देखा, पर कोई फल नहीं।

इतने ही में एक बङ्गदेशीय महिला एक टोकरी लिये हुये निकली। मैं आगे बढ़ा—गौरसे उसे देखा—परन्तु वह मेरी टोकरी न निकली। खैर, दुखी होता हुआ ट्रेन पकड़नेके लालच से जल्दी जल्दी चल पड़ा। खुदाका शुक्र है, जगह तो ऐसी मिल गयी कि आरामसे लेट भी गया। थका तो था, ही लेटते ही नींद आ गयी।

कुमिल्ला पहुँचकर मैं अपने कप्तान मित्रके बँगले पर गया। कप्तान साहब कहीं दौरे पर गये थे। नौकरने मुझे देखते ही पह-चान लिया। बड़ी सेवा-शुश्रुषा की। नहा धोकर और खाना खाकर मैं अपनी श्रीमतीजीका पत्र मिसेज चटर्जीको देनेके लिये नौकरके साथ उनके घर गया।

मिसेज चटर्जी बैठकमें कोई उपन्यास पढ़ रही थीं। मुझे देखते ही उछल पड़ीं—'ओह आप ! बिमला बहन तो अच्छी हैं ?

'जी हाँ आपको बड़ी याद करती हैं। यह पत्र आपके लिये है। हाँ, मि० चटर्जी कहाँ हैं ?'

'वे तो बाथरूममें हैं। आज बड़ी देरमें सोकर उठे। कल ही रात तो वे भी ग्वालंदूसे वापस आये हैं।'

मैंने कहा—'अच्छा तो हम और वे दोनों एक ही जहाज और एक ही ट्रेनसे आये ?'

'अच्छा, यह बतलाइये, आप सीधे यहाँ क्यों नहीं आये ? यह मैं कभी नहीं सह सकती कि आप दूसरोंके घर ठहरें'—मिसेज चटर्जी बिगड़ कर बोलीं।

'बहनजी, इसमें गुस्सा होनेकी कोई बात नहीं। मैं अपने एक फौजी दोस्तके घर ठहर गया हूँ। यहाँ वहाँ सब एक ही मामला है। पर हाँ एक बातका मुझे बड़ा दुःख रहेगा। बिमला ने आपके लिये फलोंसे भरी एक टोकरी भेजी थी। चाँदपुर तक तो वह मेरे साथ सुरक्षित रही चाँदपुरमें मैं जल्दीसे कुलीको

बुलाने गया। लौटकर आकर देखा तो टोकरी गायब। मुझे वास्तवमें बड़ा दुख हुआ।

फलोंके अतिरिक्त वह टोकरी विमलाने खास तौरसे आपके लिये बनायी थी। अहा! कितने सुन्दर अक्षरोंमें उन्होंने उसके एक कोनेमें लिखा था—

'अपनी अमलाको
—विमला'

'ओह, मैं अपनी विमलाकी भेंट न पा सकी—इसका मुझे दुःख रहेगा। जहाजमें भी अब तो चोरियाँ होने लगी!' अच्छा, और तो सब अच्छे हैं?—मिसेज चटर्जीने कहा।

'जी हाँ, आपलोगोंकी कृपा है।'

इतने ही में मि० चटर्जी धोती ओढ़े हुए बैठकमें आ गये। अमला बहनने उनको मेरा परिचय दिया। उन्होंने मुस्कराकर मुझसे हाथ मिलाया और कहा—'मुझे आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। आपकी श्रीमतीजी तो सानन्द हैं।'

मैंने कहा—'सब आपकी कृपा है।'

फिर वे बोले—मैं भी तो ग्वालँदूसे आया हूँ। मैं तो आपको चाँदपुरमें बड़ा ढूँढ़ता रहा। न मालूम आप किस डिब्बेमें बैठे?'

मैंने उनके चेहरेकी ओर गौरसे देखा। सूरत पहचानी-सी लगी। मैंने कहा—'आप भी मुझे परिचित से लगते हैं।'

वे बोले—'परिचित न होता तो तुम्हारा बोझा मैं क्यों ढोता? तुम्हारा और तुम्हारी श्रीमतीजीका फोटो तो मेरे कमरेमें है ही।'

मैं आश्चर्य चकित था। बहन अमलाको भी कुछ कम ताज्जुब न था।

फिर मि० चटर्जी अन्दर गये और कपड़ेमें लिपटी कोई चीज बाहर ले आये।

मिसेज चटर्जी बोली—'यह क्या है ?'

वे बोले—'एक चीज है जिसे तुम नहीं जानती, मैं इसे रातमें लाया था।'

बस फिर उन्होंने उस कपड़ेको हटा दिया।

मैं चौंक पड़ा—वही फलोंकी टोकरी थी।

वे पढ़ने लगे—

'अपनी अमला को

— विमला'

मैं फिर चौंका। बहन अमला भी आश्चर्य करने लगीं।

मि० चटर्जीने टोकरी मेरी तरफ बढ़ा दी, मैंने वह टोकरी बहन अमलाकी तरफ बढ़ा दी। अमलाने अपने दोनों हाथोंमें उसे ले लिया। मैं मुस्करा उठा। मिसेज चटर्जी हँस पड़ी।

मि० चटर्जी बोल उठे—'भाई चाँदपुरसे मैंने तुम्हारा बोझ हल्का किया। चाँदपुरसे यहाँ तक की मुझे बोझकी ढुलवाई मिलनी चाहिये।

बस फिर हम सब खिलखिलाकर हँस पड़े।

---

# मातृत्वका अभाव

नरेनकी ऐसी बातें सुन मैं झल्ला उठा। मेरा पारा चढ़ गया। मैंने घृणाकी हँसी हँसते हुए कहा—'नरेन ! तुम्हें स्त्रियोंकी बुराई करते शर्म नहीं आती। नारीत्वका अपमान मेरा अपमान है। मैं इसे सहन नहीं कर सकता।'

'भाई ! इसमें गुस्सा होनेकी कोई बात नहीं। यदि सच पूछिये तो आधुनिक स्त्रीमें नारीत्व है ही नहीं ?'

'क्यों ? उसका नारीत्व कहाँ चला गया ?'

'उसका नारीत्व अतीतके गर्भमें विलीन हो गया ?'

'मैं इसे नहीं मानता।'

'मत मानिये। इसमें झगड़नेकी कौनसी बात है ?'

'झगड़नेकी बात ही नहीं। सरासर नारीत्वका अपमान करते हो और कहते हो कि झगड़ेकी कोई बात ही नहीं।

भाई हमारे पूर्वजोंने भी कहा है—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः !'

'मैं इसे मानता हूँ किन्तु नारी हो तब न ? आधुनिक तितलियोंको पूजनेमें पुजारीका पतन हो जाता है। उनके इंगित पर नाचनेसे मनुष्यकी अपनी कोई अलग हस्ती नहीं रह जाती। देखा नहीं मास्टर काशीनाथ अपनी नवयौवना पत्नीके इशारे पर अपनी माँकी कितनी तौहीन करता है ! बहनकी भी कितनी खराब हालत है। रात दिन अपनी स्त्रीके इंगित पर ही नाचते

रहते हैं मास्टर साहब! केवल वे ही नहीं। कर्नल चन्द्रिका प्रसादकी स्त्री को ही ले लीजिए। मेरे सामनेकी बात है। उनका छोटा लड़का रसगुल्ला लिये फाटक के पास ही खड़ा था। भिखारिन उधरसे आयी। उसके छोटे लड़केने कर्नल साहबके लड़केसे रसगुल्ला माँगा, उसने अधखाया रसगुल्ला उसे दे दिया। मिसेज चन्द्रिका प्रसादने रसगुल्ला लेते उसे देख लिया। वे एकदम दौड़ी हुई बाहर आयीं। कलुआको बुलाया। सैकड़ों गालियाँ भिखारिनको दीं और उसके लड़केसे रसगुल्ला छिनवाकर अपने सामने नालीमें फेंकवा दिया। बतलाइये, उस समय उनका मातृत्व कहाँ गया? वह तो बच्चोंवाली थीं। उस भिखारिनके भोले बच्चेकी आँखें मिसेज चन्द्रिका प्रसादमें मातृत्व खोज रही थीं। फिर ईर्ष्या, द्वेष, डाह और जलनकी भट्ठियाँ भभकाना हमारी ये देवियाँ खूब जानती हैं। प्रारम्भसे ही सास-बहु, ननद-भौजाई देवरानी-जेठानी आदिकी लड़ाइयाँ चली आ रही हैं, और शायद अनन्तकाल तक इनका अस्तित्व अक्षुण्ण रहेगा। हम सभ्यताकी डींग हाँकते हैं, किन्तु सच पूछिये तो हम सच्ची सभ्यतासे कोसों दूर हो गये हैं। आजकी सभ्यता में धोखेबाजी, धूर्तता, मक्कारी और स्वार्थपरताको विशेष स्थान प्राप्त हैं। भाई भाईका खून बहाये, बहन बहनको कच्चा खा जाये, मातृत्व, नारीत्व तथा सतीत्वको कोई महत्व, न दे, क्या यही आजकी सभ्यता है?'

'नरेन! यह तो मैं मानता हूँ कि हमारी उन्नति वास्तविक उन्नति नहीं। हममें अभी बहुत-सी बातोंकी कमी है। परन्तु दुनिया

के लिये कहाँ तक रोया जाय? फिर ऐसा कहकर तुम अपने विषय-से बहुत दूर जा रहे हो। यहाँ बात स्त्रियोंकी हो रही थी, पुरुषों की नहीं। मैं समझता हूँ, स्त्रियाँ वास्तवमें दयाकी प्रतिमूर्तियाँ हैं। वे आदरकी ही नहीं वरन् पूजाकी भी अधिकारिणी हैं। उन्होंने हमें समय-समय पर सत्य, सहनशीलता, बलिदान और त्यागका सन्देश दिया है। आज भी सीता, अनसूया, सावित्री और पद्मिनी जैसी देवियोंके कारण हमारा मस्तक ऊँचा हो जाता है। फिर नारी ही तो महापुरुषोंकी जननी है। सच पूछिये तो नारियोंने ही मानवता, देश और राष्ट्रका सच्चा उपकार किया है। संस्कृतिके ध्वस्त प्रासाद इन्होंने ही अपने कंधोंपर रोक रखे हैं। ये महादेवी हैं। इनका अपमान ईश्वरका अपमान है।'—

मैंने गर्वसे कहा।

'यह मैं मानता हूँ, किन्तु वह जमाना चला गया। कल और आजकी नारीमें जमीन आसमानका अन्तर है। हमारी इन रंग-बिरंगी तितलियोंके बच्चे देशकी गुलामीकी जञ्जीरें १००० सालके लिए और मजबूत बना देंगे। खैर कुछ भी हो, यह तो आप मानेंगे ही कि आजकी नारीमें मातृत्व, नारीत्व तथा सतीत्वका एकदम नहीं तो बहुत अंशोंमें अभाव तो है ही।'

'नरेन! तुम यह नहीं कह सकते। मेरी स्त्री सत्यभामाको ही देखो। वह तो मेरे लड़केकी सौतेली माँ है। कितना प्यार करती है! सुरेश तो उसीको अपनी माँ समझता है। आज सुरेश चार सालका हो गया, किन्तु उसने कभी अपनी माँ की

याद नहीं की। अब मैं कैसे कहूँ कि स्त्रियोंमें मातृत्व की कमी है। मालूम पड़ता है रमेश! तुम्हारी स्त्रीमें ये सब सद्‌गुण हैं, तभी तुम स्त्रियोंके विरुद्ध इतना बोल रहे हो।'

'भैया! मैं विवाह करनेकी ग़लती कभी नहीं कर सकता। खैर इससे क्या, अपने-अपने विचार ही तो हैं।

२

वास्तवमें मैं बड़ा ही अभागा हूँ। आजसे कई साल पहले मैं पुष्पाको पाकर निहाल हो गया था। कितनी अच्छी थी वह। सुरेशको जन्म देनेके आठ ही रोज बाद वह स्वर्ग सिधारी। यों तो मैं दूसरा विवाह न करता किन्तु सुरेशके लालन-पालनके प्रश्नने मुझे विवश कर दिया। भाग्यकी बात देखिये सत्यभामा पुष्पासे भी कहीं बढ़कर निकली। नरेनके विचारानुसार तो सत्यभामाको सुरेशसे घृणा करनी चाहिये थी, किन्तु नहीं, उसके विशाल हृदयने महानताका परिचय दिया। सुरेश उसका प्राण-प्यारा बन गया और वह सुरेशकी प्राणप्यारी माँ। विधाताको यह भी मंजूर न था। उसे भी भगवान्‌ने न रखा। सुरेशको विलखता छोड़ वह भी भगवान्‌के यहाँ चली गई। यों तो मैं अपना तीसरा विवाह न करता, किन्तु कतिपय मित्रोंका आग्रह मैं न टाल सका।

यदि सच पूछिये तो लड़की देखकर मेरी लार टपक पड़ी। गोरा बदन, लम्बा शरीर, माँसल अंग, चन्द्रमा-सा चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें और सर्पिणी-सी फुँकारती हुई लम्बी चोटी देखकर

मैं ठगा-सा रह गया। जब वह जार्जेटकी प्याजी साड़ी पहनकर मेरे सामने आयी तो फिर क्या पूछना ? मैं धनी तो था ही। २० दिनके अन्दर ही विवाह हो गया। कुछ दिन तक तो अवश्य ही गुलछर्रें उड़े, किन्तु रसाभास होते देर न लगी।

मेरी नवयौवना पत्नी निवेदिता सुरेशको न चाहती थी। उसका उसपर हाथ भी बहुत चलने लगा। कई बार मेरे सामने ही उसने उसे पीटा। यदि मैं कुछ कहता तो वह मानमन्दिरकी महारानी बन जाती, फिर तो मैं उसे मनाते-मनाते परेशान हो जाता। मेरी दूसरी पत्नी सत्यभामा जब आयी थी तो उसने मेरी पहली स्त्री पुष्पाका फोटो जो मेरे सन्दूकमें पड़ा था, फ्रेम करा लिया था वह मेरे सिरहाने टँगा रहता था। निवेदिताने सत्यभामा तथा पुष्पा दोनोंके फोटो उतार डाले। जब मैं कुछ क्रुद्ध हुआ तो दूसरे दिन मुझे पता चला कि वे दोनों फोटो अग्नि-देवके अर्पण कर दिये गये।

मेरे दुःखकी सीमा न रही, परन्तु वश ही क्या था ? बी० ए० पास लड़कीको डाँटना-फटकारना भी तो सहल नहीं।

मन मसोस कर रह जाता। घरसे विरक्ति-सी होने लगी।

जिस सुरेशको मैंने कभी उँगलीसे भी नहीं छुआ, उसे ही एक दिन निवेदितासे निष्ठुरतापूर्वक पिटते देख मुझसे न रहा गया। मैंने आखिर कह ही दिया—'खबरदार ! जो अब लड़के पर हाथ उठाया। अपनी साहबी मायके में ही दिखलाना।'

मेरी बात सुनकर वह आग बबूला हो गयी और अकड़कर

बोली 'गँवार क्या जाने मेरी साहबी ! न जाने किस गँवारके साथ मुझे पिताजीने बाँध दिया ? कहाँ कालेजकी मस्ती भरी हवा और कहाँ यह दम घोंटनेवाला घरका वातावरण ।'

३

मैं किसी कामसे कानपुर गया था । चार दिन बाद जब घर लौटा तो दरवाजेपर ताला लटकता देखकर मैं घबरा गया ।

खुशकिस्मतीसे उस तालेकी एक चाभी मेरे कोटकी जेबमें पड़ी थी । ताला खोलकर अन्दर गया ।

देखा—घरका सब कीमती सामान लापता है । इतने ही में मेरी दृष्टि कुएँमें लटकते हुए रस्सेकी ओर गयी । मैं कुएँकी जगत पर चढ़ गया । रस्सेको छूते ही मैं सन्न रह गया । कोई भारी-सी चीज उसमें बँधी कुएँमें लटक रही थी ।

मैंने रस्सा खींचा । जरा देरमें ही वह भारी लगनेवाली चीज बाहर आ गयी । मैं चौंक पड़ा, जब मैंने देखा कि वह मेरे प्राणप्यारे सुरेशकी लाश है ।

मैं चीख मारकर धड़ामसे जमीनपर गिर पड़ा । उस समय मैं सोच रहा था—'क्या वास्तवमें नारी इतनी पतिता है ?'

---

## आश्रम

१

'महेश ! तुम आज ऐसी बात क्यों कर रहे हो ? मैं तुम्हें इतना पतित नहीं समझता ।'– रमेशने हैरान होकर कहा ।

'पतित, हैं ! तुम यह क्या कह रहे हो। क्या कोई मनुष्य वेश्याके घर जाने मात्रसे पतित हो सकता है ? तुम जानते हो कि मैं रेवाके यहाँ क्यों आता हूँ ?' महेशने मुस्कराते हुए पूछा।

'मैं ही क्या, इसे सारी दुनिया जानती है।'

'दुनिया नहीं जान सकती।'

'क्यों ?'

'क्योंकि उसकी आँखोंपर वासनाका पर्दा है। उसकी आँखें मनुष्यके दिलकी तह तक नहीं पहुँच सकती।'

महेश ! पर मैं यह बात माननेको तैयार नहीं कि दुनियाकी ही आँखोंपर वासनाका पर्दा है। क्या तुम्हारी आँखोंपर नहीं है ? दुनियाकी नजरोंमें शरीफ बनना चाहते हो, तो दुनियाका ख्याल जरूर रखना पड़ेगा।'

'मैं ऐसी दुनियाकी परवाह नहीं करता।'

'तो तुम्हारी भी दुनिया परवाह नहीं करती। दुनिया उसपर मरती है जो दुनिया पर मरता है। तुम वेश्याके घर जाते हो और डंकेकी चोटपर कहते हो कि मैं वेश्याके घर जाता हूँ। दुनियाकी नजरोंमें वेश्यागामी पतित है, नीच है, हत्यारा है और न जाने क्या क्या ?'

'रमेश, तो क्या तुम समझते हो कि सब वेश्याके घर अपनी भोग-लिप्सा तृप्तिके ही लिये जाते हैं ?'

'नहीं नहीं, भगवानके अखण्ड कीर्त्तनके लिये जाते हैं—क्यों ?'

'हाँ, तुम भी तानाज़नी करो।'

'इसमें तानाकशीकी कौन-सी बात है ?'

२

महेश कामुक न था। वह भोग-लिप्सा तृप्तिके लिये वास्तव में वेश्याके घर नहीं जाता था। वह चालचलनका बड़ा पक्का था, परन्तु वह अपनी प्रकृतिसे विवश था। वेश्याओंके यहाँ जाना और उनसे बातें करना उसने अपनी 'हाबी' बना ली थी। वह वेश्याओंसे सहानुभूति रखता था। वह तिलकधारियों, धर्म-ध्वजाधारियों तथा बनावटी महापुरुषोंका कट्टर दुश्मन था। वह विचित्र प्रकारका मनुष्य था। उसके बहुतसे सिद्धान्त थे परन्तु वह किसी सिद्धान्तपर कभी दृढ़ न रहा। कभी सनातनधर्मका सदस्य बना, तो कभी आर्यसमाजका। ब्रह्मसमाजका भी बहुत दिनों तक मेम्बर रहा। नयी बातें करता, पुरानी छोड़ता जाता था, परन्तु एक काम उसने जबसे सीखा, कभी न छोड़ा—वह था उसका वेश्याओंके यहाँ जाना, और वह भी खुलेआम।

वह रेवाके यहाँ अन्दरवाले कमरेमें बैठ जाता और बड़े-बड़े तिलकधारियों तथा लम्बे-लम्बे व्याख्यान देनेवाले नेताओंको रेवा के घरपर झाड़ा-फटकारा करता था। यों तो कोई भी वेश्या अपने ग्राहकके साथ ऐसा व्यवहार नहीं देख सकती, पर रेवा उन वेश्याओंमें नहीं थी जो पुरुषके धन द्वारा शासित की जाय। वह पुरुषके धनपर शासन करती थी। वह पुरुषोंसे उनकी नीचताका बदला लेनेके लिये ही वेश्या बनी थी। उसकी दृष्टिमें वेश्यागामी पुरुषका कोई मूल्य न था। महेश जब-जब उसके घर जाता था, उसको हर बार पांच रुपयेका एक नोट देता था और

चुपचाप अन्दरवाली कोठरीमें पुस्तक लिये बैठा रहता था। महीने में चार बार तो वह अवश्य ही रेवाके यहाँ जाता था। रेवा महेशको बड़े आदरकी दृष्टिसे देखती थी। महेश और रेवा दोनों एक ही पथके पथिक थे। रेवाका जीवन धन और धर्मके ठेकेदारोंने बर्बाद किया और महेशका जीवन भी इन्हीं लोगोंने नीरस बना दिया।

गरीब घरमें जन्म लेना ही अभिशाप है। एम० ए० तो उसने पास कर लिया, पर अब बिना तगड़ी सिफारिशके नौकरी कहाँ मिलती? कई बार कितनी ही प्रतियोगिताओंमें भी बैठा, परन्तु वहाँ भी धनिकोंके लाड़लोंकी विजय हुई। रुपहले और सुनहले सिक्कोंके सामने योग्यता और लियाक़तको कौन पूछता है? परीक्षकोंको जहाँ थैली थमायी कि लल्ला प्रतियोगितामें प्रथम पास हुआ। महेश आरम्भसे ही वक्ता था। कुछ-कुछ सुधारक भी हो चला था। अच्छे-अच्छोंको फटकार देता था। गम्भीर अध्ययनने उसे इतना योग्य बना दिया था कि कभी-कभी वह अपने परीक्षकोंकी भी त्रुटियाँ धीरेसे उन्हें बता दिया करता था। ये ही सब कारण थे कि वह धनिकोंका सदैव कोपभाजन रहा।

३

'प्रिये! मैं आज नहीं मान सकता। तुमको मेरी इच्छा पूरी करनी होगी।'—सेठजीने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

'सेठजी, आज मैंने व्रत रखा है। आज मुझे माफ करें!'—रेवाने नम्रतापूर्वक कहा।

'मान जाओ।'

'माफ कीजिये।'

'देखो, मान जाओ फिर भी कहता हूँ।'—सेठजीने आगे बढ़कर कहा।

'सेठजी, मेरा आज व्रत है। बेकार तंग करनेसे फायदा?'

'बड़ी व्रत रखनेवाली बनी है। मैंने आज तुझीसे जाना कि वेश्याएँ भी व्रत रखती हैं। वेश्या और व्रत!'—सेठजीने गरज कर कहा।

'सेठजी, मुँह सँभालकर बात कीजिए। ऊपर क्यों चढ़े आते हैं! आपके मुँहसे शराबकी बदबू आती है।'—रेवाने अकड़ कर कहा।

'अब तुझे शराबमें बदबू आने लगी—बोतलोंपर बोतलें पी जाती थी तब! मुझे बेवकूफ बनाती है!'

'सेठजी, आप तो पहले हीसे बने बनाये बेवकूफ हैं।'

'मैं बेवकूफ हूँ?' सेठजीने अकड़कर पूछा।

'हाँ, बेवकूफ ही हमारे यहाँ आते हैं। आपके घरमें लक्ष्मी-सी स्त्री है। उसे आप धोखा देते हैं। घरपर उसे हृदयकी रानी कहते हैं और यहाँ आकर मुझे हृदयकी सम्राज्ञी बनाते हैं। अगर आपकी गैरहाजिरीमें आपकी स्त्री किसी गैर आदमीको अपने घर बुलाये तो आप उस बेचारीको क्या कच्चा ही न खा जायेंगे?'

'जरूर खा जाऊँगा।'

'क्यों?'

'क्योंकि मैं पुरुष हूँ ।'

'तो क्या पुरुष पतित होनेका लाइसेंस लेता है ?'

'रेवा, मैं तुम्हें पचास रुपये दूँगा, मान जाओ ।'

'फिर वही बात ।'

'अच्छा सौ सही ।'

'सौ और पाँच सौ कुछ भी नहीं ।'

'अच्छा तो पाँच सौ ही सही ।'

'सेठजी, आप होशमें आइये । आप सेठ हैं, आप इज्जत-वाले हैं । आपको ये बातें शोभा नहीं देतीं ।'

सेठजीने रेवाकी बाहें पकड़ ली ।

'छोड़ दो मुझे, शर्म नहीं आती ।' कहकर रेवाने सेठको धक्का दिया ।

शराबके नशेमें चूर सेठ धड़ामसे गिर पड़े, परन्तु जरा देर बाद सेठने उठकर बड़ा भयङ्कर रूप धारण किया । 'हरामजादी' कहकर हाथमें चाकू लिये रेवाकी ओर झपटे । रेवा हाँफती हुई कोठेके जीनेपर आयी और सहायताके लिये चिल्लाना ही चाहती थी कि उसे महेश जीनेपर चढ़ता हुआ दिखाई दिया । अब उसको जानमें जान आयी । इतने हीमें सेठजी शराबके नशेमें मस्त हुए जीनेकी ओर लपके । रेवा सारा हाल संक्षेपमें महेशको बतला चुकी थी ।

सेठजीको देखते ही महेशने कहा—'सेठजी, कितनी बोतलें । पी हैं आज ?'

'कौन है ? कौन कहता है कि मैंने शराब पी है। मैं शराब नहीं पीता। यदि पीता भी हूँ तो किसीका क्या लेता हूँ ? अपना पैसा खर्च करता हूँ।'

'सेठजी, आपके मुँहसे शराबकी बदबू आती है। आपकी आँखें चढ़ी हुई हैं। फिर भी आप कहते हैं कि मैं शराब नहीं पीता। माना आप अपना पैसा खर्च करते हैं, पर वह पैसा कहाँसे आता है सेठजी! वह शराब नहीं, खून है अनाथोंका, अबलाओंका, गरीबोंका और असहायोंका।

'ओ तू महेश है। कलका छोकरा लेक्चर देता है। श्रमिक क्यों काम करते हैं ? भूखों मरते हैं तो मरें। नदीमें डूब मरें। मुझे क्या ? मुझे नहीं मालूम था कि वेश्यागामी दुराचारी और पतित महेशमें इतना साहस होगा।.........

'महेश, मैं अभी तुझे इसी चाकूसे मार देता—पर मैं कुछ सोच कर रुक जाता हूँ। वेश्यागामी महेश ! अच्छा तुझे देख लूँगा।'

'अच्छा, अच्छा,—मुँह काला करो।' महेश और रेवाने एक स्वरमें कहा।

सेठजी लड़खड़ाते लड़खड़ाते जीने से उतरे और अन्धेरेमें अदृश्य हो गये।

इधर रेवाने महेशको बड़ा धन्यवाद दिया और कहा—'महेश बाबू, मैं आपकी हमेशा एहसानमन्द रहूँगी। आपने ऐन मौके पर आकर उस दुष्टसे मुझे बचा लिया। कहिये, मैं आपके लिये क्या कर सकती हूँ ?'

'रेवा ! इसकी जरूरत नहीं। हम दोनों एक ही पथके पथिक हैं।'—महेशने कहा।

'महेश बाबू, मैं पुरुषोंसे घृणा करती थी।………' बात पूरी भी न होने पायी थी कि महेश बोल उठा—'यह 'थी' कैसी, 'हूँ' कहिये।'

'नहीं, मैं पेसोपेशमें हूँ। मैं देखती हूँ, आप भी तो पुरुष हैं। आप तो अन्य कामुक और लोलुप पुरुषों-जैसे नहीं। आप तो साक्षात् देवता हैं महेश बाबू! मेरे विचार बदल रहे हैं। महेश बाबू! तुम देवताओंके भी देवता हो। मैं तुम्हारे चरणोंकी धूल अपने सिरपर रखती हूँ। महेश बाबू! मैं अब इस जीवनसे ऊब चुकी हूँ। क्यों न हम दोनों इसी सच्चाई और पाकदिलीसे कोई सेवा-कार्य करें ?'

४

सेठजी अपनी कोठीके सामनेवाले मैदानमें टहल रहे थे। कभी उनके पैर जल्दी-जल्दी उठने लगते और कभी एकदम शिथिल हो जाते थे। यद्यपि सेठजीके पास उस समय कोई भी न था, परन्तु फिर भी वे कुछ बड़बड़ाते जाते थे। वे बार-बार फाटककी ओर बड़ी उत्सुकतासे देखते और फिर जरा देरमें आकर कुर्सीपर बैठ जाते थे। कभी किसी पुस्तकको उठाते, फिर जरा देरमें ही दो एक पन्ने उलटकर रख देते। कभी सेठजी अपने हाथोंकी मुट्ठियोंको बाँधते तो कभी अपने सीनेपर हाथ रखकर दो एक बार खाँसते।

थोड़ी ही देर बाद फाटकपर दो कसाई दृष्टिगोचर हुए। सेठजीको उन्होंने आते ही आदाबअर्ज किया और कहा—'कहिये सेठ साहब ! क्या हुक्म है ?

'भाई कल्लन तुमसे किसी बातका दुराव तो है नहीं। उसी रातको जिस रोज तुमने हसीनाके बारेमें बतलाया था, मैं रेवाके यहाँ गया था। वहाँ महेशने मेरी इज्जत उतार ली। तुम उसका काम तमाम कर दो, नहीं तो मैं दुनियामें मुँह दिखाने योग्य न रहूँगा।'—सेठजीने कहा।

'अच्छा सेठ साहब, हम जरूर इसका खून कर देंगे, लेकिन आप हमें इस कामके लिये कितने रुपये देंगे ?'

'रुपयोंकी क्यों इतनी फिक्र करते हो—हम और तुम दो थोड़े ही हैं।'

'यह तो ठीक है लेकिन ऐसे कामोंमें पहले ही तय कर लेना अच्छा होता है।'

'अच्छा तो मैं दो सौ रुपये दे दूँगा।'

'दो सौ रुपये—सिर्फ दो सौ रुपये—एक खूनके सिर्फ दो सौ रुपये। सेठ साहब हमलोग जाते हैं।'

'अरे भाई मुल्लन ! ऐसी बातें क्यों करते हो ? बैठो ! बैठो। तीन चार सौ तक ले लो तुम्हारा ही खजाना है।'

'जी सेठ साहब, यह सब ठीक है। सब घरका ही मामला है। लेकिन हमलोग ४०००) से कमपर वह काम करनेको तैयार नहीं।'

'अरे भाई ! इतने रुपये ! इतनेमें तो हमारा दिवाला निकल जायगा।'

'खून भी कराना चाहते हो, इज्जत भी बचाना चाहते हो, दुनियाकी नजरोंमें सुर्खरू भी बने रहना चाहते हो और बैंक बैलेंस घटाना भी नहीं चाहते सेठ साहब !'

'अरे भाई ! चिल्लाते क्यों हो ? धीरेसे बोलो। अच्छा मैं तुम्हें २॥ हजार रुपये तक दे सकता हूँ। इससे ज्यादा नहीं। अब जैसी तुम्हारी मर्जी हो बतलाओ।'

'हम २॥ हजारपर भी तैयार नहीं। चलो कल्लन सेठ साहबसे सौदा नहीं पटेगा।'—मुल्लनने उठकर कहा।

'अरे भाई ! मुल्लन ! इतनी जल्दी क्या है ? ठहरो जरा। हमें तो यों जाते अफ़सोस होता है। सेठ साहबके वालिदसे और हमारे वालिदसे कितनी दोस्ती थी। अच्छा, सेठ साहब ! अगर आप मानें तो मैं एक बात कहूँ।'

'हाँ, भाई कल्लन जरूर कहो। मुल्लनसे ज्यादा तो तुम्हारी आँखोंमें बाप-दादोंकी मुहब्बतका असर है।'—सेठजीने खुश होकर कहा।

'अच्छा सेठ साहब ! न मुल्लनके ४०००) और न आपके २॥ हजार। ३०००) पर सौदा पक्का रहा।' कल्लनने गम्भीर होकर कहा।

'नहीं कल्लन, मैं ३०००) पर भी तैयार नहीं।'—मुल्लनने बिगड़ कर कहा।

'नहीं मुल्लन, तुम ज्यादा मत बोलो। बहिश्तमें अपने और सेठ साहबके बाप-दादे क्या कहेंगे? जिनके बाप-दादोंमें इतनी पटी बेटोंमें जरा भी न निभी।'

'हाँ भाई कल्लन ठीक कहते हो। मुल्लन मान जाओ। ३०००) बहुत है।' सेठजीने कहा।

अच्छा जो आपलोगोंकी मर्जी। हाँ सेठ साहब, किस ओर अच्छा मौका है?' मुल्लनने धीरेसे पूछा।

'बस गङ्गा किनारे। वह कुछ सनकी तो है ही। चाँदनी रातमें अक्सर उस पार जाता है और घण्टों घूमता रहता है।' सेठजीने कहा।

५

चाँदनी रात थी। महेश, भगवती भागीरथीके किनारे मन्द-मन्द गतिसे टहलता हुआ चला जा रहा था। निशानाथ जह्नुसुताकी लहरोंमें इठला रहे थे। कभी लहरोंमें पूर्ण प्रकट होते तो कभी बादलोंकी ओटमें ही लहरोंको आश्चर्यान्वित कर देते। गङ्गातीरकी बालू चाँदीके टीलों-सी चमक उठती थी। गङ्गाके तटसे थोड़ी दूरपर सघन वृक्षोंका एक झुरमुट था जिधर कुछ गीदड़ 'हुआ हुआ कर रहे थे।' महेश गीदड़ोंकी आवाज सुननेके लिए झुरमुटके सामनेवाले तटके समीप, बालूपर लेट गया। और किन्हीं विचारोंमें तल्लीन हो गया। उसे यह ख्याल भी न रहा कि वह कहां लेटा हुआ है। जरा देर बाद उसे एक परछाहीं अपनी ओर बढ़ती दिखाई दी। वह उठनेको हुआ;

किन्तु अफसोस उसके उठते-उठते उस छद्मवेषीय मनुष्यने महेशके छुरा भोंक दिया।

निशानाथने अपना मुँह बादलोंमें छिपा लिया।

'हाय, मार डाला, बचाओ ?'—महेश चीख पड़ा।

'खबरदार, हम आ गये।'—कहींसे आवाज आयी।

जरा देर बाद एक नाव किनारेपर लगी।

'महेश चीख उठा—'मुझे मारकर हत्यारा भागा जा रहा है।'

'महेश तुम!'—कहती हुई एक युवती तेजीसे दौड़ती हुई आयी।

'रेवा! हत्यारा इसी ओर।'

'कप्तान साहब, ये मेरे मित्र हैं। जल्दी अपने मित्रोंको दौड़ाइये, हत्यारा हाथसे निकलने न पाये।'

'रेवा! मैं खुद जाता हूँ। हत्यारा कभी नहीं बच सकता। तुम महेशकी देखभाल करना। भाइयो! चलो।'

बस फिर कप्तान साहब अपने मित्रों सहित दौड़ पड़े।

इधर रेवाने अपनी साड़ी फाड़कर महेशके जख्मोंको बाँधा।

महेश पीड़ासे कराह रहा था।

रेवा उसे अपनी गोदमें लिटाये आँसू बहा रही थी।

जरा देर बाद कप्तान साहब दौड़ते हुए आये और बोले—'रेवा! मैंने हत्यारेको पकड़ लिया। महेश कैसे हैं? क्या बहुत खून निकल रहा है?'

'हां, ये तो बेहोश हो गये हैं !'—रेवाने दुखी होकर कहा।

'ओह बड़ा भारी जख्म है। रेवा ! महेशका हत्यारा मुल्लन कसाई है। मुझे इसपर पहले ही से शक था कि यह किसी भयङ्कर गिरोहका आदमी है, लेकिन सेठजीकी वजहसे इससे कुछ कह न पाता था। यह सेठजीका अपना आदमी है। इस हरामजादेने तो महेशके प्राण ही लेने चाहे थे।'

'कप्तान साहब ! महेशका कातिल मुल्लन कसाई नहीं, बल्कि सेठ है। उस रोज वाली सेठकी बात, जो मैंने आपको रातमें बतायी थी, इस कत्लका कारण है।

तत्पश्चात् कप्तान साहब तथा रेवाने मूर्छित महेशको नावमें लिटा दिया और कप्तान साहबके मित्रोंने मुल्लनको बाँधकर नावके नीचेवाले हिस्सेमें बिठा दिया।

नाव पानीको चीरती हुई चलदी।

## ६

सेठजीपर कत्लका केस चलाया गया। मुल्लनने अपने बयानमें अपनेको निर्दोष कहा। सेठजीकी सारी पोल उसने भरी अदालतमें खोल दी, सेठजीने अपना रुपया पानी-सा बहाया हाकिम-हुक्कामको बड़ी-बड़ी डालियां दी। एंड़ी-चोटीका पसीना एककर दिया, लेकिन कुछ अधिक फल न हुआ। सत्यने लक्ष्मी पर विजय पायी।

थोड़े दिन बाद लोगोंने अखबारोंमें पढ़ा—

सेठको सात सालका कठोर कारावास और मुल्लन कसाईको आजीवन कालापानी—महेशके कत्लमें सेठ करोड़ीमलका पूरा हाथ था।

वास्तवमें सेठजी और मुल्लनने अपने किये का फल पाया। इस मुकदमेमें सत्यकी छानबीन करनेमें कप्तान साहबको बड़ा परिश्रम करना पड़ा। और रेवाकी गवाही महेशकी जिन्दगी साबित हुई।

महेश बहुत दिनों तक अस्पतालमें रहा। वहाँ रेवाने उसकी बड़ी सेवा-शुश्रुषा की। उसने महेशके लिये अपना रुपया पानी-सा बहाया। रेवा केवल वेश्या ही न थी। वह एक धनी-मानीकी स्त्री थी। सोलह वर्षकी उम्रमें ही वह विधवा हुई। पतिके मरने पर अतुल सम्पत्तिकी वह एकमात्र स्वामिनी हुई, परन्तु कुचक्रमे पड़नेसे न बच सकी। अपनोंने ही उसे बड़े-बड़े धोखे दिये। बादमें उसे सभी पुरुषोंसे घृणा हो गयी—फिर पुरुषोंको नीचा दिखाना ही उसने अपना व्यवसाय बना लिया।

महेश जब अस्पतालसे बाहर निकला, तो रेवाकी खुशीका ठिकाना न रहा। फिर महेश और रेवाने शहरके कोलाहलसे दूर देहातोंमें एक आश्रम खोला। रेवाने अपनी सारी जायदाद आश्रमको दे दी। उस आश्रमके उद्देश्य ये हैं :—

(१) पतितोंको आत्मशुद्धि द्वारा उन्नत बनाना।

(२) देहातियों तथा अपढ़ स्त्री पुरुषमें शिक्षाका प्रसार करना।

( ३ ) भिखमंगोंके लिये भोजन तथा वस्त्रोंकी पूर्ण व्यवस्था करना और उनको दस्तकारी सिखाना।

( ४ ) विधवाओंको सुशिक्षिता बनाना और सर्व प्रकारेण उनकी उन्नतिके साधन एकत्र करना।

( ५ ) अनाथ बच्चोंका भरण-पोषण करना तथा उन्हें सफल नागरिक बनाना।

( ६ ) बन्धु-प्रेम, देश-प्रेम तथा विश्व-प्रेमका प्रचार करना। आदि आदि।

## ७

सात साल बाद—

आश्रमके विशाल भवनके फाटकपर एक मोटर-कार रुकी।

रेवा देवी आश्रमके मैदानमें लड़कियोंको पढ़ा रही थीं। महेश अनाथ बच्चोंको 'कवायद' करा रहा था।

सेठजीने फाटकपर दरवानसे पूछा—'महेश बाबू हैं ?'

'जी हाँ, अभी बुलाता हूँ।'

'यह लो, कार्ड ले जाओ। मैं यहीं इन्तजार करता हूँ।'—सेठजीने गम्भीर होकर कहा।

'बहुत अच्छा सरकार।'—दरवान अन्दर चला गया।

सेठजीका कार्ड पाकर पहले तो महेश सिहर उठा। वे ही पुरानी बातें फिल्मकी रीलकी तरह उसके सामने फिर गयीं; परन्तु शीघ्र ही कारकी ओर बढ़ा।

'सेठजी ! नमस्ते'—महेशने मुस्कराते हुए कहा।

'नमस्ते, महेश बाबू !'—सेठजीने उत्तर दिया।

सन्नाटा छा गया।

निस्तब्धता भङ्ग करते हुए महेश बोला—'सेठजी, आइये आश्रम देखिये। पर हाँ, यह बता दीजिये कि मुझनका कोई भाई-बंद तो यहाँ आपके साथ नहीं आया है।'

'बेटा महेश ! मुझे ज्यादा दुखी मत करो। मैंने तुम्हारे आश्रमके बारेमें बहुत कुछ सुना है। ओह ! वह क्या रेवा है जो लड़कियोंको पढ़ा रही है।'—सेठजीने दुःख और आश्चर्यके भाव प्रकट करते हुए कहा।

'जी हाँ, मैं उनको अभी बुलाता हूँ।'

'नहीं महेश ! मैं स्वयं चलता हूँ।'

सेठजीने रेवाके पास जाकर कहा—'रेवा देवी ! नमस्ते।,

रेवाने सेठजीको पहचाना और उधरसे मुँह फेर लिया।

सेठजी लौट पड़े।

महेशने कहा—'सेठजी ... ....'

सेठजी कुछ न बोले। वे फाटकपर आ गये और अपनी कारमें बैठ गये। ड्राइवरसे कार स्टार्ट करनेको कहा।

महेशने फिर कहा—'सेठजी, मुझे इसका बड़ा दुःख रहेगा।'

'इसमें दुःखकी कौनसी बात है महेश ? लो, मैं तुम्हारे लिये एक लिफाफा लाया हूँ।'

कार चल दी। सेठजीने लिफाफा महेशकी ओर फेंक दिया।

महेशने लिफाफा खोला और पढ़ा :—

'बेटा महेश, मैं जेल भुगतकर आ गया हूँ वास्तवमें मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया। उसका बदला मुझे मिल गया। मेरे दोनों बेटे, बहुएँ, लड़की और दामाद सब इसी साल पहाड़पर गये थे। रसोइयाने धनके लालचमें उन सबको जहर देकर मार डाला। हत्यारा भी अबतक गिरफ्तार न हुआ। मुझे अब इस संसारसे विरक्ति हो गयी है। तुम्हारा और बेटी रेवा का यह आश्रम हमेशा फलता-फूलता रहे! मैं अपनी सारी जायदाद आश्रमको दे रहा हूँ। साथ ही दस्तावेज नत्थी है। तुम और रेवा मुझे क्षमा कर देना। आज मैं दो बजेकी गाड़ीसे जब तुम मेरा पत्र पढ़नेमें लगे होगे, पञ्जाब मेलसे कहीं बहुत दूर निकल जाऊँगा। मैं तीर्थ-स्थानोंमें विचरूँगा और अपने पापोंका प्रायश्चित करूँगा। किसीको स्टेशन भेजकर यह कार भी मँगा लेना। मेरा ड्राइवर मेरे साथ ही जायगा। कारको आश्रमके काम में लाना। अच्छा, बेटा महेश, और बेटी रेवा! मुझे क्षमा अवश्य कर देना।'

महेशके आंसू टप-टप दस्तावेज पर गिर रहे थे और रेवा बगलमें खड़ी कुछ सोच रही थी।

---

# दुरेअख्तर

गाड़ी अबाधगतिसे बढ़ी जा रही थी। कितनी ही बरसाती नदियों तथा नालोंको वह पार कर आई थी, और मैं, जो चुपचाप

सेकिंड क्लासके एक कोनेमें गुमसुम बैठा था, न जाने कितने पहाड़, कितनी पहाड़ी सुरंगें, कितनी नदियाँ तथा कितने हरे भरे मैदान पार कर चुका था। पेशावरसे ट्रेन चलकर लगभग दो घण्टेमें कैम्बलपुर पहुँची थी। उस समय मेरी हालत कुछ और ही हो गयी थी। उस समय मुझे याद आयी अपनी वे पुरानी शरारतें जब मैं और मेरी बहन विमला तथा कितने ही खानोंके लड़के लड़कियाँ नंदना नदीके विशाल पुलके नीचे बालूपर खेला करते थे और मैं विमला तथा दुरेअख्तरकी चोटियोंको बाँध देता था। गाँठ भी इतनी कड़ी लग जाती कि वे दोनों बालिकाएँ परेशान हो जाती थीं। विमला कहती—'भैया! यह खेल मुझे नहीं भाता।' दुरेअख्तर कहती—'रहने दो भैया, चोटियां टूट जायँगी, फिर विमला बहनकी कोई शादी भी न करेगा। लम्बी चोटियोंकी कद्र होती है न भैया!'

मैं कहता—'जी विमला, जी दुरेअख्तर। आप दोनों ठीक फरमाती हैं।'

फिर हम सब खिलखिलाकर हँस पड़ते।

विमलाको बालूके गढ़े खोदनेमें बड़ा आनन्द आता था और दुरेअख्तरको नंदनाके चश्मोंका ठण्ढा-ठण्ढा पानी बड़ा अच्छा लगता था। कभी-कभी विमलाके बहुत जिद करनेपर वह भी उसकी तरह अपना पैर बालूमें गाड़कर बैठ जाती और बालूको उसके चारों तरफ थपथपाकर जमाया करती। मैं पूछता—'अख्तर! यह क्या करती हो, तो वह विमलाकी ओर देखने लगती,

विमला जरा मेरी ओर मुस्कुराती और फिर हौलेसे उससे कहती—'कह दो न, भाड़ बना रहे हैं।'

दुरेअख्तर सिर हिलाती और अपनी बड़ी-बड़ी भोली आँखें जरा मेरी ओर उठाती। फिर विमलाको देखती और तत्पश्चात् मुस्कुराती हुई मुझसे कहती—'देखो न, भैया! भाड़ बना रहे हैं, विमला बहन भी बना रही हैं और मैं भी बना रही हूँ। बतलाओ न, किसका भाड़ अच्छा है?'

फिर वे दोनों भोली बिल्लियोंकी तरह अजब तरहका मुँह बना कर मेरी ओर ताकतीं। क्या वे सुन्दर मुखड़े इस जीवनमें कभी भुलाये जा सकते हैं?

मैं कहता—'अच्छा आया'

फिर मैं बहुत देर तक किसी स्कूल-मास्टरकी तरह बड़े गौरसे दोनोंके बालू-निर्मित भाड़ोंको देखता और जरा देरमें ही उनको लम्बे हाथोंसे बिगाड़ देता और कहता—'बहुत खराब।'

इसपर दुरेअख्तर तो मुस्कुराती रहती, पर विमलाका पारा अवश्य चढ़ जाता। वह मुझे गालियाँ भी दे लेती और कभी-कभी गुस्सेमें आकर बालूकी गेंदें बनाकर मुझे मारा भी करती। दुरेअख्तरको भी मेरे खिलाफ विमलाकी ओरसे लड़ना पड़ता था। यदि कभी वह मेरे खिलाफ लड़नेसे इन्कार करती तो विमला उसकी भी वही हालत किया करती जो मेरी करती थी।

मैं यह सब सोच रहा था। मुझे मालूम ही नहीं होता था कि कब गाड़ी रुकी और कब चली।

मैं प्रवाहमें फिर बह चला। ओह! वह दिन क्या कभी भुलाया जा सकता है जिस दिन हेरो नदीके तटपर विमला और दुरेअख्तरकी चल गई थी। किस बातपर चली, यह मैं नहीं जानता। हेरो नदीके सुन्दर-सुन्दर पत्थरोंके ढोंके चलाये जानेके पहले दुरेअख्तर मेरे पास [आई और बोली—'भाईजान, आज मुझमें और विमला बहनमें एक बड़ा जङ्ग होगा। बालूकी बारूद और ढोकोंकी गोलियाँ चलेंगी। भाईजान, आपको मेरी तरफसे लड़ना पड़ेगा।'

मैंने कहा—'बहुत अच्छा, जरूर लड़ूँगा।'

'बहुत अच्छा, जरूर लड़ूँगा—बड़े लड़नेवाले आये कहीं के!'—कहती हुई विमला भी टपक पड़ी और मेरा हाथ पकड़कर लगी जोर जोरसे हिलाने।

दुरेअख्तर कहती—'भैया मेरी ओर रहेंगे।'

विमला कहत—'नहीं, भैया मेरी तरफसे लड़ेंगे।'

मैं परेशान था। दोनों मेरी दोनों बाहोंको झकझोर रही थीं। मैंने कहा 'सुनो विमला! क्या तुम्हें वह किस्सा याद है जब महाभारतकी लड़ाई शुरू होनेके पहले अर्जुन तथा दुर्योधन श्रीकृष्णसे मदद माँगने गये थे।'

विमलाने कहा—'हाँ'

'तो फिर बस'

'तो फिर बस क्या?

'तो फिर बस यह कि मैं दुरेअख्तरकी मदद करूँगा।'

'सो क्यों ?

'तो फिर तुम्हें वह किस्सा क्या खाक याद है।'

इतने ही में दुरेअख्तर बोल उठी—'नहीं, भैया! विमला बहनको महाभारतका कोई भी किस्सा याद नहीं। यह सब बातें झूठमूठ यों ही कह दिया करती है।'

'मालूम तो मुझे भी ऐसा ही पड़ता है'—मैंने विमलाकी ओर मुस्कराते हुए कहा।

अब तो विमला अपने गाल फुलाने लगी और मेरी ओर बड़े गौरसे आँखें निकाल-निकालकर देखने लगी।

मैंने कहा—'विमला, देखती क्या हो? जब कृष्णने अर्जुन की मदद की तो मैं भी दुरेअख्तरकी मदद करूँगा। अर्जुनकी तरह यह भी तुमसे पहले ही आई है।'

'अच्छा तो ज़ाइए, आप उनकी मदद कीजिए। रमजान भाईको मैं अभी बुलाती हूँ। वह तो मेरी तरफसे जरूर लड़ेगा और ढेला फेंकनेमें वह आपसे भी ज्यादा होशियार है। समझे?'

'पर रमजान तो आज अब्बाजानके साथ दफ्तर गया है। वह कहाँसे टपक पड़ेगा?'—दुरेअख्तरने आँख नचाते हुए कहा।

विमलाने कहा—'देखो देखो, कैसी झूठ बोलती है? वह आ गये रमजान भैया।'

बस फिर क्या था, बातकी बातमें दो पार्टियाँ तैयार हो गईं। खानोंके तमाम लड़के तथा लड़कियाँ दर्शक थे। पत्थरोंके टुकड़े काफ़ी तादादमें चले। बालूकी गेंदोंका भी इस्तेमाल किया

गया। विमलाने दुरेअख्तर पर बहुतसे ढेले चलाए पर दुरे-अख्तरके एक भी न लगा। जब दुरेअख्तरने तीन-चार ढेले बराबर विमलाकी ओर फेंके तो विमलाने मक्कर करनेकी सोची। वह—'हाय मरी' कह अपना घुटना पकड़ जमीन पर बैठ गयी। उसके मुँहसे ये शब्द निकले ही थे कि कि दुरेअख्तर दौड़ी हुई उसके पास गई और विमलाको अपनी गोदमें लिटाकर अपनी धानी ओढ़नीसे हवा करने लगी। विमला मक्कार थी। उसने अपनी दोनों आँखें बंद कर लीं।

हम दोनों विमलाकी चालाकी समझ गए

अब दुरेअख्तर—'विमला बहन क्या हुआ, विमला बहन क्या हुआ, उठो, उठो—'कहकर उसकी आँखोंको चुमने लगी और मुझसे तथा रमजानसे बोली—आओ भैया! देखो न, विमला बहनको क्या हो गया? मैं यह जानती तो ऐसा खेल कभी नहीं खेलती।'

तत्पश्चात दुरेअख्तर फूट-फूटकर रोने लगी। दुरेअख्तरके आँखोंसे आँसू उसके गालोंपर बह आये और वे ही आँसू विमला के गालपर चू पड़े। उनका गिरना था कि विमला—'हा, हा, ही ही—करती हुई उठ बैठी। फिर तो हम सब एक साथ खिल-खिला उठे।

इधर गाड़ी एक सुरङ्गको पार कर रही थी। मैं फिर सोचने लगा—फिर वे दिन आये, जब मैं फौजी कप्तान हुआ। उस रोज दुरेअख्तरने अपनी सारी सहेलियोंको बुलाकर मेरे घरको

परिस्तान बना दिया था। सलवारोंकी सरसराहट और सालुओं की बहार फिर वैसी देखनेमें कभी न आई। कितने ही रङ्गकी सलवारें, ओढ़नी तथा कुर्तियाँ थीं। हमारे घरमें ही उस रोज साक्षात् इन्द्रधनुष उतरा था और चित्रसेनकी स्वर-लहरीका स्रोत था हमारा घर। विमला, दुरेअख्तर तथा खानबालाओंके सुरीले कण्ठसे निकले हुए गीतकी ये पंक्तियाँ—

'दीवा बले सारी रात, मेरिया जाल्मा,
दीवा बले सारी रात, दीवा बले सारी रात।
बत्तियाँ वटा रख् दी, बत्तियाँ बटा रख दी मेरिया जाल्मा
दीवा बले सारी रात, दीवा बले सारी रात।
आवेंगा तां पुच्छ लवांगी, आवेंगा तां पुच्छ लवांगी
मेरिया जाल्मा, किथे गुजारी सारी रात।
दीवा बले सारी रात, दीवा बले सारी रात॥

वायुमण्डलमें गूञ्ज रही थीं; यों तो और भी महिलाएँ थीं, पर इन खानबालाओंके समान नहीं या यों कहिए कि वे मुझे इनके सामने न जँचीं।

गाड़ी बराबर भागी चली जा रही थी। नीचे झुककर देखा तो मालूम हुआ कि वह सम्भवतः कोई नदी पार कर रही है। आकाश मेघाच्छन्न था। वह रात्रिकी भीषणताको और भी बढ़ा रहा था। जंगली जानवरोंकी आवाजें भी यदा-कदा सुनाई दे जाती थीं। हवा बड़े मजेकी चल रही थी। पर इन नेत्रोंमें नींद कहाँ? ये तो किसी तपस्वीकी भांति जग रहे थे। सोच रहा था—

सवेरा होते ही लगभग ८॥ बजे लाहौर पहुँच जाऊँगा और वहाँ मिलूँगा—अपनी प्यारी अख्तर बहनसे। उसे देखकर कितनी खुशी होगी। नन्दना और हेरो नदियोंवाली बातें क्या उसे अब तक याद होंगी। मुझे खूब याद है जब उसकी इच्छाके विरुद्ध सिकन्दरने उसकी शादी लाहौरके एक फौजी हवलदारसे कर दी थी तो वह कितनी परेशान थी। मैं भी उस शादीके पक्षमें न था, पर मैं तो कहनेको गैर ही था। लाख अख्तर मुझे अपना समझे, पर दुनिया तो नहीं समझती। मैं अख्तरको लाख बहन कहूँ, पर दुनियाको तो नहीं सूझता। उसकी जबान तो नहीं रुकती। सोच रहा था, मैं बड़ा खुशनसीब हूँ जो मुझे युद्धमें चटगांव जानेका हुक्म मिला—विमला पटनेमें और दुरेअख्तर लाहौरमें। सोचा था, दोनों बहनोंसे कह दूँगा कि अब इस भाईको भूल जायँ। यह भाई लड़ाईपर जा रहा है। अब इसका क्या ठिकाना! बचपनके खेलकी बातोंकी दुरेअख्तरको याद दिलाऊँगा और पूछूँगा कि अख्तर तुमने इतने दिनोंसे मुझे खत भी न लिखा। काश! मैं दुरेअख्तरके लिये नन्दनाके चश्मोंका पानी लाता। उसे काश्मीरी सेव बहुत अच्छे लगते थे और विमलाको हरे बादाम। मैं पेशावरसे चलनेके पहले ही पर्याप्त मात्रामें दोनों चीजें बाँध लाया था। सोचता था—आज फिर अपनी अख्तर को अपने हाथसे सेव खिलाऊँगा। पर फिर सोचता—'न जाने उसके ससुरालवाले...... ...' बस फिर आगे कुछ न सोच पाता।

एकाएक गाड़ी रुकी। अरे यह तो लाहौर आ गया। मैं जल्दीसे उतरा। कुलीसे सामान उठवाया और ताँगा कर सीधा अनार कली गया। वहाँ से थोड़ी दूरपर अख्तरका घर था। अख्तरके घरके पास ही एक नल लगा था जिसके चारों तरफ स्त्रियोंकी भीड़ लगी हुई थी। मैं तांगेमें पिछली सीटपर बैठा था। ताँगा नलको पार कर कुछ दूर बढ़ा ही था कि पीछेसे एकाएक एक स्त्री 'भैया, भैया' चिल्लाती दौड़ती हुई आई। उसके साथ पानीका एक छोटा घड़ा भी था। मैंने उसे अपनी ओर बढ़ते देख ताँगेवालेको रुकनेका आदेश किया। ताँगेवाला रुक गया। मैं ताज्जुबमें था आखिर यह कौन होगी।

'भैया, भैयाकी आवाज और भी नजदीक आ गई। हैं! यह क्या, वह गिर पड़ी!! क्या उसके ठोकर लग गई!!! मैं आगे बढ़ा—देखा, प्यारी अख्तर है। मैं रो पड़ा। मेरी अख्तर, तुम यहाँ! तुम्हारी यह हालत!

वह उठी और मुझे चिपट गई 'मेरा भैया, मेरा भैया कहती हुई।' मैंने उसे सँभाला, ताँगेमें बिठाया। और फिर हमलोग चल दिये। जरा देरमें ताँगा उसके दरवाजेपर रुका। वह खुशीमें पागल हुई खुद भारी भारी सामान उठाने लगी। मैंने कहा— 'अख्तर! पागल हो गई हो?'

वह बोली—'भैया, आज तुम्हें पाकर मैं दरअस्ल पागल हो गई हूँ—चलो, चलो भैया अन्दर चलें।'

फिर वह मुझे पकड़कर ले चली। अन्दरका दृश्य जो देखा तो हृदय धकसे हो गया। एक चारपाई पर एक रोगिणी पड़ी कराह रही थी। दुरेअख्तरने रोगिणीके कानमें मुँह लगाकर ( शायद बुढ़िया कुछ बहरी थी ) कहा—'अम्मीजान, भाईजान आये हैं। वह अन्धी बहरी बुढ़िया बुखारमें जल रही थी। उससे 'आं' के सिवा कुछ भी कहते न बना।

दुरेअख्तर मुझसे बोली—'भाई साहब, ये मेरी सास हैं। इनकी तबियत आज कुछ ज्यादा खराब है, वैसे बीमार तो ये हमेशा रहती हैं।'

इस बीचमें मैं बराबर टकटकी लगाए दुरेअख्तरके मुँहकी ओर ही देख रहा था। मनमें विचारोंका तांता बँध रहा था। सोच रहा था, हाय आज अख्तरके गुलाबी गालोंको क्या हो गया! क्या यह वही अख्तर है? क्या मेरी अख्तर इतनी कमजोर हो गई? क्या मुझे वह एक चिट्ठी भी नहीं लिख सकती थी? तो क्या फिर मैं उसका कोई नहीं?

इतने ही में दुरेअख्तरने मुझे हिला दिया—'क्या सोच रहे हो भैया?'

'कुछ नहीं अख्तर—पहले यह बताओ मंसूर कहाँ हैं?

'भैया, कुछ न पूछो—अभी चार महीने हुए, वे लड़ाई पर चले गए'—वह कातर स्वरमें बोली।

'ओह, बड़ा बुरा हुआ अख्तर'—मैं फिर चुप हो गया।

'विमला बहन तो अच्छी हैं ? क्या अभी हालमें कोई उनका खत आया था ?'—अख्तरने पूछा।

'अख्तर ! उसके बारेमें तुम्हें क्या बताऊँ ? वह खत लिखनेमें बड़ी सुस्त है। कभी-कभी छठे-छमाहे खत आ जाता है।'

'विमला बहनको ऐसा नहीं करना चाहिये।'

'और अख्तर बहनको करना चाहिये—क्यों न ? यही कहती हो !'

'नहीं भाई ! मैंने मजबूरन आपको छह महीनेसे खत न लिखा।'

'हाँ ठीक है'—कहते हुए मैंने उस बुढ़ियाकी नब्ज टटोली, बुखारमें जल रही थी वह और आँय-बाँय-साँय बक रही थी।

जरा देरमें ही दुरेअख्तर मुझे दूसरे कमरेमें ले गई। वहाँ देखा—चायका बाकायदा इन्तजाम। मुझे मालूम ही नहीं हुआ कि कब अख्तर मेरे पाससे उठो और उसने इतनी जल्दी चाय भी बना डाली। मैं विचारोंके प्रवाहमें जो बह रहा था न !

एक कप चाय मैंने और अख्तरने बड़ी कोशिशें करनेपर बुढ़ियाको पिला पाई। उस रोज मैंने अख्तरसे बहुत कहा कि खाना बनानेकी तकलीफ न करो, बाजारसे ले आयेंगे —पर भला वह कब माननेवाली थी !

वह दिन बड़े आनन्दसे कटा। उस रोज बाजारसे मैं अख्तरकी बुढ़िया सासके लिये दवा और अंगूर भी लाया।

रातमें भी हमलोगोंको नींद न आयी। अपनी पुरानी बातों को कहते नहीं थकते थे। मेरी घड़ीमें लगभग १२॥ बज चुके थे। मैं रात भरका जगा हुआ था। मुझे नींद आ गई।

लगभग तीन बजे बुढ़ियाकी बकझकने मेरी निद्रा भङ्ग कर दी। पासवाली खाटपर नजर डाली। देखा—अख्तर बेसुध पड़ी सो रही है। दिन भर बेचारी मेरी खातिरदारीमें लगी रही थी। शायद बहुत थक गई थी।

बुढ़िया शायद ख्वाब देख रही थी, और कुछ जोर-जोरसे कह भी रही थी। मैं ध्यानसे लेटे-लेटे उसकी बातोंको सुनने लगा। वह कह रही थी – बेटी! आये! रुपये आये! मन्सूरने रुपये भेजे? कितने भेजे? अरे, वह कम्बख्त रुपये नहीं भेजेगा। जबसे गया, खबर भी न ली। तू इस तरह चक्की पीस-पीसकर कब तक गुजर करेगी? तेरा फूल-सा चेहरा मुरझा गया। अरे, अरे, तू हँस रही है। तेरा भाई कहाँ है? वह क्या कहेगा? उसे क्या खिलायेगी? वह बेचारा क्या कहेगा? आये, रुपये आये, आये?'

मैं मन्त्र-मुग्ध-सा, भौचक्का हुआ, दिलपर पत्थर रखे, ये हृदय-विदीर्णकारी बातें सुन रहा था। मुझसे न रहा गया। मैंने बुढ़ियाको हिलाते हुए कहा—'मा, आप यह क्या कह रही हैं?'

इसी बीचमें दूरेअख्तर भी उठकर जल्दीसे अपनी सासके पास आ गई। शायद उसने भी अपनी सासकी कुछ बातें सुन ली थीं। वह मुझसे बोली—'भाई साहब, ये इसी तरह ख्वाबमें न जाने क्या-क्या बका करती हैं?'

मैंने कहा—'हाँ, ठीक है।'

वह मेरी तरफ देखने लगी।

जरा देरके बाद मेरे दिलकी सारी बातें मेरे आंसुओंने दुरे-अख्तरसे कह दीं।

वह बोली—'भाई साहब, आप यह क्या करते हैं?'

'अख्तर! क्या मैं तुम्हारा कोई न था? क्या तीन पैसेका एक कार्ड भी तुम मेरे पास नहीं डाल सकती थीं? फिर जब मैं यहाँ आया, तुमने मुझे फिर भी धोखेमें रखा। अपनी हालत को तुमने मुझसे छिपानेकी कोशिश की, पर इस मा ने मुझे सब बता दिया। तुम रो-रोकर और दूसरोंका पीसना पीसकर अपने दिन बिताती हो। हा! मेरी अख्तरपर इतना दुःख!! ईश्वर, तू बड़ा ही निष्ठुर है!!! मैं यह सब क्या देख रहा हूँ! क्या अख्तर अब भी मुझसे सारी बातें छिपाओगी। मंसूरके रुपये न आए थे, तो इस भाईके रुपये तो कहीं नहीं चले गये थे?'

अब दुरेअख्तरका धैर्यका बाँध टूट पड़ा। वह मुझे लिपट गई और लगी फूट-फूटकर रोने।

मैंने उसे धैर्य बँधाया और कहा—'अख्तर, अब तुम्हें किस बातकी फिक्र जब तुम्हारा भाई ही तुम्हारे पास है?'

फिर बड़ी मुश्किलोंसे एक काश्मीरी सेव खिलाकर उसे हँसा पाया।

फिर जबतक मैं रहा, वह बहुत खुश रही।

तीसरे दिन मैंने कहा—'अख्तर, तुम्हें मालूम है, आज कौन तारीख है ?'

'क्यों भैया, आप तारीख क्यों पूछ रहे हैं ? आज तो चार तारीख है ?'

'यों ही पूछ ली और एक यह भी बात है कि मैं पाँच तारीख को यानी कल १२॥ बजेकी गाड़ीसे पटना जाऊँगा।'

'क्या विमला बहनके यहाँ ?'

'हाँ'

'तो फिर मैं भी चलूँ। जमाना हुआ विमला बहनसे मिले। अब तो दिल यही चाहता है कि वह मुझे मिल जाय और मैं घंटों उसे सीनेसे लगाये रहूँ। नन्दना और हेरो नदियोंवाली बातें फिल्मकी रीलकी तरह अब भी आँखोंके सामनेसे गुजर जाती हैं। सोचती हूँ, उस जीवनमें और इस जीवनमें कितना फर्क है। कभी यही अख्तर भाईको हँसाती थी और आज यही उनके आँसू देख रही है।'

'अख्तर ! मुझे यह नहीं मालूम था कि मंसूरको इतनी जल्दी लड़ाईपर भेज दिया जायगा। अगर मुझे पहलेसे जरा भी खबर होती, तो ऐसा कभी नहीं होने देता।'—मैंने कहा।

'भाई ! आप बात टाल रहे हैं। विमला बहनके यहाँ मुझे ले चलनेमें आप झिझक रहे हैं। आपको नहीं मालूम, हम दोनों इतने दिनोंकी बिछुड़ी हुई किस उत्साह और उमंगसे दौड़कर, एक दूसरेसे मिलेंगी और हम दोनोंके आँसू उस मिलनमें और भी

सरसता ला देंगे। भैया, तुम तो पहले भी कई बार ऐसा मिलन देख चुके हो। बोलो न, सोच क्या रहे हो?' – दुरेअख्तरने मेरा हाथ पकड़कर कहा।

मैं अब बड़ी चिन्तामें पड़ा। चाहता था कि दुरेअख्तरको यह न बताऊँ कि मैं भी मंसूरकी तरह लड़ाईपर जा रहा हूँ। मंसूरके कारण वह कितनी दुखी है। अब उसे मेरा ही एकमात्र सहारा है। उसके टूटे दिलको अब और ज्यादा दुखानेकी गुञ्जा-इश नहीं। उसको यह दुख असह्य होगा। इसलिए कह दिया था, केवल विमलाके घर तक ही जा रहा हूँ। कल १२॥ बजे मेरी फौजी ट्रेन लाहौर जंकशनसे रवाना होगी। उसमें मेरे और भी बड़े-बड़े आला अफसर होंगे, मैं इसे कैसे ले जा सकता हूँ? फिर सोचता, रास्तेमें दुरेअख्तरको विमलाके यहाँ छोड़ देता। यह वहीं रहती, जबतक मैं और मंसूर लड़ाईसे वापस न आ जाते, पर कौन जाने, विमला और दुरेअख्तरमें न पटी। दूसरे बिहारमें छुतछातका अधिक बोलबाला है। विमलाके अड़ोसी-पड़ोसी विमलाको इसके लिए कुछ बुरा तो न कहेंगे? फिर विमलाके पति कुमार बाबूका भी क्या भरोसा? वह भाईके दिलको क्या जाने! उसके तो कोई बहन भी नहीं। यदि मेरी अख्तरसे कुछ कह दिया तो मेरा क्या हाल होगा! जिसे कैम्बल-पुरमें कभी फूलकी तरह पाला गया, आज उसकी यह हालत! बस हद हो गई। अब इससे ज्यादा देखना तो दूर रहा। मैं इस हालतका, आज ही जाते वक्त यह लिफाफा देकर, हमेशाके

लिए अन्त कर दूंगा—हमेशाके लिए—हां हां, हमेशाके लिए—एक हजार रुपये अख्तर बहुत दिन चलायेगी और मैं ३ या ४ महीने के बाद लड़ाईसे जरूर वापस आजाऊँगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं लड़ाईमें मरूँगा नहीं। ईश्वर, मुझे अपनी बहनोंके लिए जरूर जिन्दा रखेगा। मैंने अभी तक शादी न की। विमला और अख्तरने बहुत जोर दिया। कितनी ही बार कहा—'भैया, शादी कर लो, भाभी देखेंगे।' पर मैं उससे दूर रहा। यदि शादी हो गई होती और खुदा न ख्वास्ता दो एक लड़के भी हो गये होते, तो इस वक्त कितनी परेशानी होती। उनके प्रति भी मुझे अपना पूरा कर्त्तव्य करना पड़ता। अब तो मुझे केवल इन दो ही बहनोंकी चिन्ता है। अगर इन्हें सुखी कर गया, तो फिर मुझे मरनेकी भी चिन्ता नहीं।

इतने ही में अख्तरने मुझे फिर हिला दिया, बोली—'क्या गुमसुम सोच रहे हो भैया ?—बोलो न ?' मैंने कहा—'माफ करना अख्तर, ज़ुरा कागज-पेंसिल ले आओ—मैं जबानी एक बड़ा हिसाब जोड़ रहा हूँ।'

'अच्छा, अभी लाई'—कहकर वह चली गई।

मैं फिर सोचने लगा—विमलाके यहां अख्तरको ले जाना ठीक नहीं। न जाने कुमार क्या समझेगा ? फिर विमलाने मुझे अभी तक यह भी नहीं बतलाया कि सी० आई० डी० की सर्विस छोड़नेके बाद कुमारने क्या काम करना शुरू किया, उसकी कितनी आमदनी है, कैसे गुजर करते हैं। कितनी ही बार मैंने

विमलाको रुपये देनेकी कोशिश की, पर उस स्वाभिमानिनीने उन्हें कभी भी स्वीकार नहीं किया। विमला तो माँ-जाई बहन है और अख्तर धर्म-बहन और मैं वह बदनसीब भाई हूँ जो अपनी बहनोंकी दशासे ही अवगत नहीं। दुरेअख्तर भी छिपाती है और विमला भी छिपाती है। विमला भावुक है और उसे पति भी ऐसा मिला है जो उससे भी कहीं ज्यादा भावुक है—वह कवि है, कलाकार है और न जाने क्या क्या है। मैं तो अभी तक उसे न समझ सका। समझनेकी बहुत कोशिश की, पर सफल न हो सका। हाँ तो अख्तरसे कैसे कहूँ कि मैं तुम्हें विमला के घर नहीं ले चलूँगा। अरे—हाँ, खूब सूझा—अख्तर जा भी कैसे सकती है। फिर उसकी सासकी तीमारदारी कौन करेगा? —बहाना तो खूब मिल गया।

इतने ही में दुरेअख्तर कागज और कलम दावात ले आई और बोली—'जोड़िये भैया हिसाब और फिर बतलाइये कि मुझे आप अपने साथ ले चलेंगे या नहीं?'

'अख्तर क्या तुम अपनी सासको ऐसी हालतमें छोड़कर चलोगी? फिर कभी चलना।'

'ओह! मैं तो यह भूल ही गई थी। पर भैया, दो चार दिन यहाँ और रह लो। जल्दी क्या है?'

'नहीं अख्तर मुझे बड़ा जरूरी काम है। बड़े साहबने मुझे कलकत्ते भी बुलाया है और मुझे रास्तेमें दो तीन जगहोंका मुआईना भी करना है।'

'पर मैं तो कल आपको नहीं जाने दूँगी।'

'अख्तर तुमने जिद्द करनेकी अपनी पुरानी आदत अभी तक नहीं छोड़ी। याद है हेरो नदीके किनारे वाला विमलाका और अपना जङ्ग। अगर मैं नहीं जाऊँगा, तो समझ लो नौकरी भी छूट जायगी।'

'नौकरी भी छूट जायगी—नहीं भैया, ऐसा मत कहो—आप जरूर जाइये, अख्तर आपको नहीं रोकेगी। नौकरी क्यों छूट जायगी?—नौकरी छुट जाय दुश्मन की।'

२

मेरी गाड़ी भागी चली जा रही थी। मालूम पड़ता था मानो मेरी गाड़ी भी समुद्रमें गिरनेवाली कोई उतावली नदी है जो द्रुतगतिसे अपने प्रियतम समुद्रसे मिलनेके लिये निरन्तर भागी चली जा रही है। मैं अपनी प्यारी पाँचो नदियाँ पार कर चुका था। उनकी अपार जलराशि, उनकी कलकलध्वनि कोहमरी-के रमणीक दृश्य, घाटियोंकी मनोहर हरियाली, नन्दना और हेरोके मनोमुग्धकारी चश्में, बर्फसे आच्छादित कैम्बलपुर तथा एबटाबादके पहाड़ोंकी सुन्दर चोटियाँ—अतीत की वस्तुएँ जान पड़ने लगीं। मैं अपने डिब्बेमें चुपचाप बैठा था। स्वप्न चल रहा—ओह, दुरेअख्तरको मैंने कैसा धोखा दिया। इस छोटेसे पहलूमें एक छोटा-सा दिल था। दिलमें अरमान थे। अरमानोंमें वेदना थी, कसक थी और उस कसकमें आहें थीं, आँसू थे। पर वे आहें और आँसू वहीं दबे रहे। मैंने उन्हें निकालने

का मौका ही कब दिया ! जब अख्तर मुझे स्टेशनपर पहुँचाने आई और जब उसने मुझे फौजी ट्रेनमें घुसते देखा तो उसका माथा ठनका। उसने कई बार पूछा—'भैया, इस गाड़ीमें क्यों बैठे ! ऐसी ही गाड़ीमें तो वे भी बैठकर गये हैं। यह गाड़ी बहुत बुरी है।'

मैंने कहा—'अख्तर, यह फौजी गाड़ी है। इसमें आरामसे पहुँच जायँगे। दूसरी गाड़ियोंमें आजकल बड़ी भीड़ रहती है। मैं पटना उतर जाऊँगा, यह गाड़ी आगे चली जायगी। इसमें मेरे एक दोस्त लेफ्टीनेन्ट भी हैं। उनकी बहुत जिद्दसे ही मैं इसमें बैठा हूँ।'

उस समय तो वह चुप हो गई, पर उसके चेहरेसे साफ जान पड़ता था कि उसका मन किसी उधेड़बुनमें था।

फिर जब मैंने उसे कपड़ोंमें लिपटा हुआ एक बण्डल दिया तो उसके चेहरेपर और भी गम्भीरता छा गई। उसने यह भी कहा—'भैया, आप मुझे यह क्या दे रहे हैं; क्या मैं इसे यहीं खोल लूँ ?'

मैंने कहा—'नहीं अख्तर, तुम्हें मेरी कसम, इसे घर ले जाकर ही खोलना। इसमें तुम्हारे लिये कुछ रखा है।'

फिर ताँगेवालेको मैंने दो रुपये दिये और कहा—'बीबीजी को ठीकसे घर पहुँचा देना।'

जब तक गाड़ी चली, दुरेअख्तर चुप ही रही। वह चुप थी, बातें कर रही थीं उसकी आँखें। जीभ बन्द थी, आखें खुली

थीं···जीभ जिस बातको सहस्र वाक्योंमें भी नहीं कह सकती, उसे आँखें एक इशारेमें ही कह देती हैं।

खैर, गाड़ीके सीटी देते ही मैंने दुरेअख्तरको हृदयसे लगा लिया और कहा—'जल्दी ही फिर आऊँगा, दुखी मत होना।'

बस गाड़ी चल दी। उस समय मैंने देखा अख्तरके आँसू उसके गालों पर ढुलक चले थे और मेरे आँसू आँखोंमें ही थे।

बड़ी देर तक हम दोनोंके रूमाल हिलते रहे परन्तु समयकी दूरीने उनपर भी पर्दा डाल दिया। परन्तु मुझे सन्तोष इस बातका था कि दुरेअख्तर अब कुछ दिन आरामसे रहेगी। जब उसने मेरा दिया हुआ बण्डल घर ले जाकर खोला होगा तो उसे कितनी खुशी हुई होगी।

जब मेरी गाड़ी रातमें पटना पहुँची, तो मैं आनन्दातिरेकसे नाच उठा। लगभग ११॥ बजे होंगे। अन्धेरी रात थी, कुछ बूँदाबांदी भी हो रही थी। रह रहकर बिजली कौंध उठती थी। ट्रेनसे बाहर निकलनेको मन नहीं चाहता था। अधिकतर लोग ट्रेनकी खिड़कियाँ बन्द किये सुखकी नींद ले रहे थे। गाड़ी रुकते ही मैं उठा—स्टेशनके बाहर आया। एक टैक्सी किरायेपर की। उससे यह शर्त ठहरी कि वह मुझे मेरे इच्छित स्थानमें ले जाकर अमुक व्यक्तिसे मिलाकर १५ मिनटमें ही फिर स्टेशन पहुँचा देगा—क्योंकि मेरी गाड़ीको केवल बीस मिनट ही ठहरना था; और इसके लिये उसने मुझसे ठहराये दस रुपये।

मेरी गाड़ीने हार्न दिया और सड़कपर तैरती हुई चली। जरा देरमें ही विमलाके घर पहुँच गयी। गाड़ी रुकी, मैं उतरा। मैंने नीचेसे आवाज दी। कोई न बोला। कितनी ही आवाजें देनेके बाद एक साहब ऊपरसे ही बोले—'क्या है साहब ? कुमार बाबू तो सिनेमा देखने गए हैं। आप सबेरे उनसे मिल लीजिएगा।'

मेरा हृदय धक-से हो गया। मैंने फिर कहा—'जनाब, क्या आप नीचे उतरनेका कष्ट कर सकते हैं ? मैं लाहौरसे आया हूँ।'

'ओह, आप लाहौरसे आये हैं, क्या कप्तान साहब हैं ? अभी आया।'

बस फिर वे सज्जन उतर आये। मैंने उन्हें सारी बातें बतलाईं, फिर हमलोग सिनेमा-गृहोंकी ओर गये। वहाँ भी खड़े होकर उन सज्जनने कुमार बाबूको कितनी ही आवाजें दीं, पर ईश्वरको हमलोगोंका मिलन पसन्द नहीं था। इधर मेरे १५ मिनट भी पूरे हो रहे थे। क्या करता, मजबूर था। दिलपर पत्थर रखकर स्टेशन लौटना पड़ा। कितनी उमंगे लेकर गया था—सोचा था, विमलाको दुरेअख्तरकी कुछ बातें बतलाऊँगा और उससे यह भी कहूँगा कि अख्तरको अभी तुम अपने ही पास रखो। विमलाके दुःख-सुखकी भी दो एक बात सुन लेता। पर नहीं भाग्यमें यह कहाँ था। मैं हमेशाके लिये अलग हो रहा था—अपनी विमलासे, कुमारसे। कौन कह सकता है कि मैं लड़ाईमें मरूँगा नहीं, आदमीकी जिन्दगी का ठिकाना ही क्या। टके-सी जान जाते देर ही कितनी लगती है—'ठाँय ठाँय' एक

फायर और बस खात्मा। दार्शनिक कहते हैं, जीवन अनन्त है, आत्मा अमर है। तुम्हें जिससे वास्तविक स्नेह है, वह तुम्हें अगले जीवनमें भी प्राप्त होगा। हुँ, अगले जीवनकी कौन जाने—जो इस जीवनमें नहीं प्राप्त हुआ, उसका फिर क्या भरोसा? मैं यों ही सोच रहा था।

टैक्सी हार्न देती हुई भागी चली जा रही थी। अंधेरी रात थी। सड़क पर बिजलीके खम्बे एक पँक्तिमें प्रहरीसे नजर आ रहे थे। बिजलीके बल्व अपने क्षुद्र प्रकाशसे रात्रिके अन्धकारको काम करनेकी धुनमें थे—और उसमें वे कुछ-कुछ सफल भी हो रहे थे। रात्रिके अंधकारको मिटानेके लिए थे वे, पर मेरे दिलके अँधकारको मिटानेके लिये कौन था। मेरे दिलमें अन्धेरा ही अन्धेरा था। रह रहकर दुरेअख्तर तथा विमलाकी याद आती थी। स्टेशन पहुँचा, टैक्सीवालेको दस रुपये दिये। तत्पश्चात् अपने कम्पार्टमेन्टमें जा बर्थ पर गिर पड़ा और लगा फूट-फूटकर रोने।

फिर कब गाड़ी चली, मुझे कुछ नहीं मालूम।

## ३

'फायर, फायर, फायर' - मैंने अपने सैनिकोंको हुक्म दिया।

बन्दूकों तथा राइफलोंने आग उगल दी। उस आगमें कितने ही हृदयोंके शीतल रक्तोंने अपनी हस्ती मिटा दी। शीतल होने पर भी वे उसे शीतल न कर सके। मैं बड़े जोशमें रिवाल्वर लिये आगे बढ़ा जा रहा था। मेरे सैनिक जी तोड़कर लड़ रहे

थे, परन्तु दुश्मन फिर भी आगे बढ़े आ रहे थे। हमारी टुकड़ी भला उनको किस प्रकार हरा सकती थी? एक पर दो हों, चार हों, तब तो गनीमत है; यदि एक मनुष्य पर पन्द्रह 'पन्द्रह पिल पड़े, फिर तो ईश्वर ही रक्षक है।

मैं हताश हो चला था। प्राणोंका माया-मोह त्यागकर मैं बड़ी मुस्तैदीसे लगातार फायर कर रहा था। अपने सारे वीरोंको मृत्युके मुखमें जाते देख मैंने भी भागकर एक सुरक्षित जगह ( Position of vantage ) खोज ली थी। मैं वहींसे फायर कर रहा था। मेरे भी दो एक गोलीयाँ लगीं, पर न जाने उस वक्त मुझमें कहाँकी ताकत आ गई, कि मुझे कुछ मालूम ही न पड़ा। गोलियाँ मेरे काममें रुकावट न डाल सकीं। दुश्मन भी लगातार फायर कर रहा था और मैं भी उनका प्रत्युत्तर दे रहा था। आसागिरीकी कहानी पढ़ी थी। ५०० तोपें गोले उगल रही थीं और आसागिरी निर्भीक समुद्रकी सतह पर बढ़ा जा रहा था। एक भी गोला उसके न लगा। आज मैं खुद आसागिरी बन गया।

'ठायँ, ठायँ, ठायँ, ठायँ,'—जरा देरमें ही पीछेसे फायर होने लगे। जो दुश्मन मुझे घेरे हुए थे, वे कटे पेड़की तरह गिरने लगे। मैंने देखा—मुझे घिरा जानकर मेरे कुछ बहादुर सिपाही जानपर खेलकर आये हैं। जरा देरमें ही मामला साफ था।

हमलोग दुश्मनोंकी तलाशी ले रहे थे कि एकाएक—'मरा, मरा, बचाओ बचाओकी आवाजने मुझे चौंका दिया। मैं

पिस्तौल ले उधर ही दौड़ा जिधरसे आवाज आई थी। मैंने देखा, एक नवयुवकको दो बलिष्ट सैनिक जबर्दस्ती खींचे हुए लिये जा रहे हैं। मैं दुश्मनके सिपाहियोंको एकदम पहचान गया। मैंने एकदम पिस्तौल दाग दी। एक सैनिक तुरत धड़ामसे जमीनपर गिरा, परन्तु दूसरेने जो बड़ा रोबीला मालूम पड़ता था, मुझे युद्धके लिए ललकारा। मैंने उसे भी पिस्तौलका निशाना बनाना चाहा, पर अफसोस पिस्तौलमें एक भी कारतूस न रहा था और मैं अब कालके गालमें जानेको विवश था कि इतने ही में मेरे बहादुर सिपाही बन्दूक लिये आते दिखाई दिए। हैं! यह क्या!! इस दुश्मनने तो पिस्तौल निकाल ली। तो क्या अब यह मुझे मार देगा? कभी नहीं—मैं एकदम किसी पहलवानकी तरह जाकर उससे भिड़ गया; पर वह भी कुछ कम तगड़ा न था। नवयुवकके हाथ पैर बँधे थे। वह रस्सियोंको तोड़ने तथा उठनेकी बहुत कोशिश कर रहा था और सतृष्ण नेत्रोंसे मेरी ओर देख रहा था। मैं एक हाथ से बलिष्ठ सैनिकको डाटे था और दूसरेसे उसका पिस्तौलवाला हाथ पकड़े था। उसने मुझे झटका दिया और पिस्तौलका घोड़ा दबा दिया। मैं बहुत मजबूतीसे उसका हाथ पकड़े था। मैंने पिस्तौल चलनेसे पहले ही उसका हाथ मोड़कर पिस्तौलकी नली उसकी ओर करनेकी कोशिश की; परन्तु अफसोस उस छीना झपटीमें पिस्तौल उस दिशा में चल गई जहाँ वह नवयुवक बँधा पड़ा था और सद्अफसोस वह गोली उस नवयुवकके ठीक कलेजेपर बैठी। वह चीख पड़ा।

इतनेमें मेरे सिपाही आ गए; पर मैंने उनके आनेसे पहले ही उस बलिष्ठ दुश्मनको गला घोंटकर मार डाला। फिर उसकी पिस्तौल भी फायर न कर सकी। करती भी कहाँ से? वह भी मेरी ही पिस्तौलकी तरह हो गई थी।

अब मैं उस सिपाहीकी ओर बढ़ा जिसे मैं बचाने आया था— देखा जीवन-लीला समाप्त हो गई थी। मेरे सैनिकोंने उसकी जेबोंकी सारी चीजें निकालीं और लाकर मेरे सामने रख दीं। उन चीजोंमें एक लिफ़ाफ़ा भी था जिसपर अनारकली लाहौरकी मुहर थी। मैंने उसे बड़ी उत्सुकतासे खोला और पढ़ा :—

मेरे सरताज :—

खुदा तुम्हें मेरे सरपर सलामत रक्खे, और मेरा सुहाग हमेशा कायम रहे। मैं बहुत अफसोसके साथ लिखती हूँ कि हमारी खुशदामन साहिबाने हमलोगोंको दाग़े मुफ़ारेक़त दिया और परसों इस दुनियासे गुजर गईं। कप्तान साहबवाले रुपये अब भी बहुत हैं; अभी सिर्फ सात महीने तो हुए ही हैं। मैं बड़ी होशियारीसे खर्च करती हूँ। रमजान भाई कहीं भाग गया है—कल अब्बाज़ानका ख़त आया था! विमला बहन और कुमार बाबू भी दो रोजके लिए यहाँ आए थे। वे दोनों आपके लिये बड़े फिक्रमन्द थे। कप्तान भाईका भी अब कोई ख़त नहीं आता। सुनते हैं कि वे भी कहीं लड़ाईपर चले गए हैं।

आपको अच्छी तरहसे मालूम है कि सिवाय आपके और कोई मेरा सरपरस्त नहीं। आपका ख़त न आनेसे जो सदमा मेरे दिलपर

गुजर रहा है उसे मैं क्योंकर बयान करूँ। इतना काफी है कि हर-वक्त दिल धड़कता रहता है और ख्वाहिश यही होती है कि क्योंकर अपनेको आपतक पहुँचाऊँ। मगर आपको इतना भी ख्याल नहीं कि कभी-कभी तो अपनी खैरियतका खत लिख दिया करें ताकि मेरे दिलको तसकीन हो—वर्ना नहीं मालूम, घबरा-घबरा कर मेरी हालत कैसी मखदूश हो जायगी।

आपकी जाँनिसार कनीज़

दुरेअख्तर

हैं! तो क्या यह मंसूर है?

बस मुझे चक्कर आ गया! मुझे नहीं मालूम फिर क्या हुआ।

## ४

आज मैं जनरल हूँ। मेरे आला अफसरोंने मुझे यह ओहदा मेरी बहादुरीके लिए दिया है। जिस बलिष्ठ आदमीको मैंने गला घोंटकर रणक्षेत्रमें मारा था, वह दुश्मनकी सेनाका कर्नल था। कर्नलको मारकर जनरल बना हूँ। पर सच पूछिए तो मैं अब पहले जैसा भी खुश नहीं। दुरेअख्तरका वैधव्य इन आँखोंसे कैसे देखा जायगा! उस गरीब बहनकी दुनिया उजड़ गई। बड़ा गजब हुआ!!!

अब लड़ाई भी प्रायः खत्म हो चली थी। ब्रिटिश बममारों और हिन्दुस्तानी जाँबाजोंने दुश्मनके छक्के छुड़ा दिये। मुझे भी अब वापस लौट जानेका हुक्म मिल गया। हुक्म मिलते ही

मैं वहाँसे चल पड़ा और बड़े साज-बाजके साथ कई दिनकी यात्राकर विमला तथा कुमारके यहाँ पहुँचा।

एकाएक मुझे देखकर उनके दिल बाँसों उछलने लगे। कुमार मुझे लिपट गया और लगा फूटफूटकर रोने। विमलाका तो कुछ कहना ही नहीं! मैं उस रोज वास्तवमें कुमारको पहचान सका जब उसने सैकड़ों पत्रकारोंके बीचमें 'जर्नलिज्म' पर वक्तृता दी। वह शहरका ही नहीं, भारतवर्षका नामी-गरामी जर्नलिस्ट हो गया था, और उसकी आय भी बहुत थी। मुझे सन्तोष हुआ विमलाकी खुशकिस्मती पर; फिर दुरेअख्तरका ध्यान आया। सोचता—कहीं दुरेअक्तरको भी कुमार जैसा पति मिलता।

मैं पाँच दिन विमलाके यहाँ रहा। वे ५ दिन बड़ी मुश्किल से कटे। कारण, मैं दुरेअख्तरके लिये बड़ा चिन्तित हो रहा था। पहले तो मैंने बहुत चाहा कि मैं मंसूरकी मृत्युका हाल विमला तथा कुमारको न बतलाऊँ; पर बिना बतलाये भी न रहा गया। विमला तो इस खबरको सुनकर लगी फूटफूटकर रोने। दुरेअख्तरका फोटो उठा लाई और बड़ी देरतक उसे हृदय से लगाए रोती रही। विमलाको न जाने इधर कौन-सी बिमारी लग गई थी, वह बहुत कमजोर हो गई थी। उसे चक्कर आ गया मैंने अपनी विशाल बाहोंपर उसे सँभाल लिया। कुमारकी भी हिचकी बँध गई, रोता और कहता—'ई ईश्वर, तेरे जैसा निष्ठुर दुनियामें और भी कोई होगा? हाय, दुरेअख्तरका

जीवन ही स्वाहा हो गया। इतनी कम उम्रमें उसे वैधव्यका भी दुख देखना पड़ा। कली खिलने भी न पाई थी कि क्रूर कालने झटका मार कर उसे नेस्तनाबूद कर दिया। भाई, यह दुख असह्य है। भाई! हमलोग भी थोड़े दिन हुए, उसके यहाँ गये थे। वह तो स्वर्गकी कोई देवी है जो भूलसे इस संसारमें चली आई है। हा! अब क्या होगा?'

'कुमार! अब सिवा रोनेके और क्या होगा? अच्छा विमला को तो सँभालो'—कहकर मैंने विमलाको उठाया। वह दुरेअख्तर का फोटो हृदयसे लगाए अविरल गतिसे अपने आँसू बहा रही थी। मैंने बड़ी मुश्किलसे अख्तरका फोटो उससे लिया और उसे बहुत समझाया।

तीसरे रोज हम सब पञ्जाब मेलसे रवाना हुए। अम्बाला पहुँचते-पहुँचते विमलाकी तबियत खराब हो गई—कमजोर तो वह पहले ही से थी। विमलाकी बीमारीकी वजहसे यात्रामें अब वह आनन्द, वह लुत्फ़ और वह चुहल कहाँ? वह बात-बातमें हँसती और हँसाती थी। खैर किसी तरह लाहौर पहुँचे। टैक्सी की और अनारकलीके लिये रवाना हुए। जरा देरमें ही टैक्सी दुरेअख्तरके घरके सामने थी। अख्तर हमलोगोंको देखते ही उछल पड़ी। 'विमला बहन, विमला बहन' कहती हुई दौड़ी, और विमलाको लिपट गई। उन दोनों बहनोंके प्रेमाश्रु गालोंपर बहते देख मैं भी अपनेको न रोक सका, परन्तु फिर शीघ्र सँभलकर बोला—

'वाह अख्तर, वाह विमला, रोनेमें तो तुम दोनोंको कमाल हासिल है।'

अख्तर बोली—'भाई! आज हम दोनोंको भरपेट रो लेने दो'

'अच्छा तो खूब रोओ'—मैंने हँसते हुए कहा। जरा देर बाद विमला खिलखिला पड़ी और बोली—'धत पगली, कबतक राह देखती रहूँ, तेरा तो रोना खत्म ही नहीं होता?'

'तो क्या मैं रोनेमें तुमसे पीछे रह जाने वाली हूँ'—अख्तर भी मुस्कुरा उठी।

इधर हमदोनों भी खिलखिला उठे।

जरा देरमें अख्तर बोली—'विमला बहन तुम बहुत कमजोर हो गईं?'

'और तुम तो बड़ी पहलवान हो गईं। देखो न इतनी तो मोटी हूँ, भीमसेन थोड़े ही बनना है!'

फिर हमलोग सब अन्दर गये। दिन बड़े मजेमें गुजरने लगे। कितने ही प्रकारके रोज प्रोग्राम बनते। आज रेस, कल 'बोटिंग' परसों 'हंटिङ्ग' और सिनेमा। कभी-कभी तो कितने ही प्रोग्राम एक दिनमें ही खत्म कर देते। उस रोज विमला बहुत थक जाती—परन्तु अख्तर अधिक नहीं।

दस रोज बात-की-बातमें गुजर गये। ग्यारहवें दिन विमला को बड़ी तेजीसे बुखार चढ़ा। १०० डिग्रीसे लेकर १०३'५ तक पहुँच गया। डाक्टर आया, देखा, दवा दी, बातें कीं और चलता बना। कितनी ही बार वह आया और गया पर विमला

को कुछ लाभ न हुआ, बल्कि मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की।

मैं अपना रुपया पानीकी तरह बहाने लगा। लाहौरके लगभग सभी नामी-गरामी डाक्टरोंको लाया, पर हालतमें रत्ती भर भी परिवर्त्तन न हुआ।

एक रातकी बात है। अख्तर अपनी जाँघपर विमलाका सिर रखे धीरे-धीरे दबा रही थी। मैं और कुमार एक पलँगपर जो विमलाके पलँगसे सटा हुआ बिछा था बैठे किसी उधेड़बुनमें थे कि एकाएक हमलोगोंको विमलाका रोना सुनाई पड़ा। अख्तरने विमलाको अपने सहारे पलँगपर बिठा लिया—

'विमला बहन! कैसा लगता है?'

'कुछ नहीं अख्तर, पानी ला'

मैं एक गिलासमें पानी लाया।

अख्तर तथा मेरी मददसे विमलाने उसमेंसे थोड़ा पानी पिया। पानी पीकर विमला बोली—'अख्तर, मैं आज तुझे एक बात बतलाऊँगी। सुनेगी?'

'विमला बहन! लेट जाओ, विमला बहन—'अख्तर, मैं अब हमेशाके लिये लेट जाऊँगी—पर मेरी प्यारी अख्तर सुन, एक बात सुन। क्या तू यह बात सुन सकेगी? इस बातको सुननेसे पहले अपना कलेजा पत्थरका बना ले—देख कहीं तेरे कानोंके पर्दे न फट जायँ। इस खबरको सुनानेके लिये मैं अबतक जीती ही क्यों रही! मेरा हृदय क्यों न फटा! पृथ्वी क्यों न

फटी ? मेरी प्यारी छोटी बहन अख्तर ! सुन, मंसूर लड़ाईमें मारे गये ; पर सुन, तेरा मंसूर मैं तुझे देती हूँ—प्राणनाथ ! प्राणनाथ ! मैं अब जा रही हूँ । हाथ लाओ । अख्तर ! हाथ ला, ले तेरा मंसूर यह है । प्राणनाथ, आजसे तुम्हारी विमला यही है । मेरी छोटी बहन अख्तर और विमला दो नहीं । अख्तर तूने इस बड़ी बहनकी बातको कभी नहीं टाला । मैं अब मर रही हूँ । मेरी आखिरी बात भी मत टाल । तेरा मंसूर यही है, तू इन्हींमें मंसूरको देख । प्राणनाथ, तुम्हारी विमला यही है । मेरे इन अन्तिम शब्दोंको मत भूल जाना, नहीं तो मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी । अहा ! तुम दोनोंके मिले हुए शीतल हाथ मेरे सीनेपर मेरे हाथोंसे दबे मुझे कितना सुख पहुँचा रहे हैं ।

'अख्तर ! प्राणनाथ !! भैया !!! रोओ मत , मैं सुखसे जा रही हूँ ।

अख्तर ! प्राणनाथ !! भैया !!!

मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ हुआ यह सब देख रहा था ।

---

# मैं मन्दिर, मस्जिद और गिरजाघर से भी महान हूं ।

वह गरीब था। उसके सब कोई मर चुके थे। कोई उसको आश्रय देनेवाला न था। लोगोंकी नजरोंमें वह एक भिखारी था और वह भी पतित। कोई उसे चोरकी पदवी देता तो कोई उठाईगीरे की।

उसका कोई धर्म नहीं था।

भूखेका क्या धर्म ? जहां दो रोटियां मिलीं ; खाईं ; पानी पिया और चल दिया। कभी-कभी तो पानी भी पीनेको नहीं मिलता। दाता लोग एक आधी रोटी देकर ही भगा देते। फिर क्या, वह इधर-उधर पानी पीता फिरता। कभी-कभी तो नाली के पानीसे भी प्यास बुझा लेता।

लोगोंने अब उसके लिये एक और उपाधि खोज निकाली—पागल, पागल।

अब तो उसे जमाना ही पागल कह उठा। लड़कोंकी बन आई। धड़ल्लेसे उस पर खुलेआम ईंट-पत्थरोंकी वर्षा होने लगी।

जेठ मासकी चिलचिलाती दोपहरी।

खूनसे लथपथ।

कौन ?

वही पागल।

भाग रहा है बेतहाशा।

'प्यासा, प्यासा, पानी, पानी,'—चिल्ला उठा वही पागल। पर कौन सुनता है ?

सुनकर भी लोग अनसुनी कर देते हैं—पागल जो ठहरा न ?

पास ही मन्दिर था। गया, गया—पागल वहीं गया। पानी माँगा। पुजारी सोंटा ले दौड़ा—'साला पागल कहीं का।'

पागल भागा और बेतहाशा भागा !

यह लो, मस्जिद आ गई। पागलने दरवाजा खटखटाया; पर कोई आवाज नहीं। फिर लगा जोर-जोरसे खटखटाने, और प्यास, प्यास, पानी, की रट लगाने।

दोपहरी भीषण रूपसे जल रही थी। 'अबे हरामीके बच्चे! फिर आ गया। नींद हराम कर दी। ठहर तो साले, मारे जूतियोंके भेजा निकाल दूँगा—कहता हुआ एक मुल्ला हाथमें जूती लिए हुए निकला।

देखते ही पागल भागा—फिर उसने पीछे भूलकर भी न ताका।

भागा और खूब भागा। बेहोश हो गया बालू पर कई जगह। फिर होशमें आया।

शरीर जलता पाया। 'हाय, हायरे मरा!'—कह कर फिर भागा।

घण्टाघरकी घड़ी टन टन टन टन चार बजा रही थी; और पागल बेतहाशा भागा चला जा रहा था।

सामने गिरजाघर था। पागल उधर ही बढ़ा—पानी पानी, प्यासा प्यासा की रट लगाते।

सर्मन ( Sermon ) में विघ्न पड़ा। युवतियाँ चिल्ला उठीं। युवक बिगड़ उठे। 'डियर' और 'डार्लिङ्ग' की आवाजोंने जोर मारा। ख्रीस्टके गुस्सेका पारा चढ़ गया—'हरामजादा है, हरामजादा'

स्नो, पाउडर और लवेंडरसे सुसज्जित और सुरभित तितलियों-सी नवयुवतियाँ चिल्ला पड़ीं—'भगा दो भगा दो, हमारे कपड़े खराब कर देगा।'

पागल वहाँसे भी भागा और खूब भागा।

अँधेरा बढ़ चला था। हाथको हाथ नहीं सूझता था, और वह भागा ही चला जा रहा था।

नाला आ गया; पर यह क्या, वह भागता ही चला जा रहा है। शायद नालेमें अपनी प्यास बुझाने जा रहा है।

हैं! यह क्या!!—धड़ाम—फिर छपाछप। नाक, कान और मुँहमें पानी भर गया। उसने मन भरके पानी पिया। यहाँ उसे वास्तविक शान्ति मिली। जरा देरमें ही वह एक सुन्दर लोककी यात्रा कर रहा था—उस सुन्दर लोककी जहाँ ईर्ष्या नहीं, द्वेष नहीं, डाह और जलन नहीं। वहाँ सुख, शान्ति तथा प्रेमका साम्राज्य अटल है।

इधर नालेकी प्रखर धारा हहर हहर कर बह रही थी। उसका भीषण गर्जन वायुमण्डलमें गूँज रहा था—'मैं मन्दिर, मस्जिद और गिरजाघरसे भी महान हूँ। मैंने एक गरीबको शान्ति दी है।

---

# एक रूमाल

उस दिन मैंने अपना ट्रङ्क खोला। तहमें पड़ी हुई चिट्ठियोंका बण्डल निकाला। धीरे-धीरे उसे खोलने लगा। कुछ पत्रोंको पढ़नेके बाद एक रूमालको लिये बड़ी देर तक हृदयसे लगाये रहा।

'अहा वे दिन कितने सुन्दर थे!—मुँहसे निकल गया।

उषाकाल था। मन बहुत प्रसन्न था। प्रत्येक अतीत घटना स्वप्नके समान आँखोंके सामने आने लगी।

एकाएक हृदय काँप उठा। काश, ऐसी अनेकों बहनें भारत में होतीं!

रूमाल पर आँसू टपटप गिर रहे थे। हाय, मैं उसके साथ ही क्यों न मरा? हृदय धिक्कार रहा था।

वह मुझे प्यार करती थी। प्यार भी ऐसा वैसा नहीं। वह प्यार प्राणोंका प्यार था। उसे किसी हृदयवानका हृदय ही समझ सकता है। वह मेरी सहपाठिनी थी। मैं भी उसके लिये अपने

प्राण तक देनेको तुला रहता था। वह अक्सर मेरे कमरेमें आती और मुझे भी कभी-कभी अपने घर पकड़ ले जाती। वह मुझसे अपने माता, पिता, भाई आदिके सामने भी निःसङ्कोच बातें किया करती थी। वे लोग भी मेरे जानेसे किसी बातका ख्याल नहीं करते थे। सब ऊँचे ख्याल और ऊँचे दिमागवाले थे। उसपर उनका विश्वास भी अत्यधिक था। वह कविताकी शौकीन थी। मेरी कविता उसे प्रिय थी! उसे बड़े चाव से वह अपनी मा को भी सुनाती थी।

मैं समझ नहीं पाता था। आखिर मतलब क्या? मैं कुछ और ये कुछ और; इतने प्रेमका आशय क्या? उसके घरवाले भी उसे मेरे साथ घनिष्ठता बढ़ानेसे मना नहीं करते। शायद वे मेरे साथ इसकी ..........

❀ ❀ ❀

'प्रिये! मैं अब ..........'

वह चौंकी। छिः—यह आप क्या कहते हैं? आप तो एक कवि हैं। कवि राष्ट्रका निर्माता होता है—एक आदर्श पथ प्रदर्शक ..........

मैं घबरा गया।

वह कहती गई—आप मेरे सहपाठी हैं। मेरी आपसे मित्रता है। मुझे आपसे प्रेम है, पर इसका आशय क्या आपने वासना समझ लिया? क्या स्त्रियोंसे मित्रता क्रूर पुरुष समुदाय इसी-लिए करता है—केवल अपनी घृणित वासनाकी पूर्तिके लिए—

वे समझते हैं, स्त्रियाँ मित्रता नहीं निभा सकतीं। यह पुरुषकी नीचता है।

मैं चुप था।

वह फिर बोली—जब आप जैसे कलाकारके हृदयमें भी ऐसे कुविचार घर कर सकते हैं तो अन्य साधारण पुरुषोंकी बात ही क्या ? मैं आपको देवता-स्वरूप समझती हूँ। क्या फिर औरतें पुरुषोंको निन्द्य समझ कर उनके प्रति मित्र-भाव रखना ही छोड़ दें ? सचमुच पुरुष क्या इतना पतित है ?

मैं फूल उठा।

मैंने उसे देखा, पूर्ण देवीके रूपमें। हृदयमें आर्य-ललनाओं की सच्चरित्रताकी भावनायें उमगने लगीं।

मैंने एकदम उसके पैर पकड़ लिये और फिर मैं लगा फूट-फूट कर रोने।

उसने कहा—'नहीं, यों काम न चलेगा। रोओ मत। हम-लोगोंको अभी देश तथा समाजका बहुत-सा कार्य करना है।'

फिर मैंने उसके हाथमें खद्दरका एक बढ़िया रूमाल देखा—हाथ मेरी ओर बढ़ा और उसने उस रूमालसे मेरे आँसू पोंछ दिए।

## २

वह आज नहीं है। वह तो कानपुर हिन्दू-मुस्लिम हत्याकाण्ड में किसी जालिमकी गोलीका शिकार हो गई, पर मैं अभागा बच

गया। गोली चलनेसे पहले यही रूमाल मैंने सिर-दर्द होनेपर उसके सिरमें बांधा था। उस वक्त फूलबागमें सभा हो रही थी। बादमें उसने रूमाल खोलकर मुझे दे दिया और कहा था—'आज सभामें गड़बड़ मच जानेके कुछ आसार नजर आते हैं। न जाने मुझपर कैसी बीते। मेरा यह रूमाल अपने पास''''''

वह इतना ही कह पाई थी कि 'मार दो, मार दो' के नारेके साथ दो तीन सौ उत्तेजित व्यक्तियोंने सभा पर आक्रमण किया। उस समय प्रधानजी मञ्चपर खड़े होकर हिन्दू-मुस्लिम एकतापर लेक्चर दे रहे थे। एकाएक भगदड़ मच गई। पुलिसके आते ही आते लाठी तथा छूरेके वार शुरू हो गये। न जाने कहांसे उसपर पागलपन सवार हुआ। वह दौड़कर मञ्चपर चढ़ गई और ललकार कर बोली—'भाइयो! यह क्या उपद्रव है? हिन्दू मुसलमान दोनों भाई-भाई हैं—फिर यह जुल्म क्यों? यह खूनी खञ्जर निकाल कर एक दूसरेका खून पीने क्यों बढ़ रहे हो?' ''''पीछेसे एक गोली उसके सिरमें लगी। मैं उसे उठाने दौड़ा। देखा, मुरझाये फूलकी तरह वह पड़ी हुई है। पृथ्वीकी गोदमें ही शायद उसे शान्ति मिली थी।

फिर मुझे कुछ पता नहीं, क्या हुआ। दो तीन लाठियां खाकर मैं भी बेहोश हो गया।

## ३

पांच दिनके बाद मैं कुछ स्वस्थ हुआ। अस्पतालकी चारपाई पर था; और वह! रूमालकी याद आई। बड़ी मुस्किलसे

डाक्टरसे अपना पुराना कोट माँगा, पर वह वहाँ था नहीं। पुलिसके पास था—हृदय धक-से हो गया। डाक्टरकी बड़ी मिन्नतें की। कहना व्यर्थ होगा—बड़ी मुश्किलसे वह कोट मिला। दिल धड़क रहा था। जाने रूमाल जेबमें होगा या नहीं!

बड़ी उत्सुकतासे जेबमें हाथ डाला, पर जेब तो नीचे दामन तक चली गई थी। दिल बैठने लगा। हाथ डालता चला गया। देखा, बिलकुल तहमें कुछ कपड़ा-सा मालूम पड़ा। आह! वही रूमाल था।

मैं विचार-प्रवाहमें बहा चला जा रहा था और आँसू टपटप उसी रूमाल पर गिर रहे थे।

---

# अन्तिम इच्छा

गङ्गा और गण्डकके सङ्गम पर खड़े-खड़े प्रोफेसर रामनाथ अपनी सह-धर्मिणीकी चिताको धू-धू कर जलते देख रहे थे। उनके मित्र तथा परिवारके कुछ लोग चितासे कुछ दूर एक नाव पर जो किनारेसे लगी थी, बैठे थे। वहाँ प्रोफेसर साहबकी चर्चा हो रही थी। एक वृद्ध बोला—'भाई, आजकलके युवक जो चाहे करें। कहीं ऐसा भी होता है कि स्त्रीकी मृत्यु पर बाल भी न बनवाये जायँ और सूट-बूट पहनकर लाशमें आग लगायी जाय!

'बाबा इतनी ही बात हो तब न! इन्होंने तो लाश भी किसीको छूने नहीं दी। इससे ज्यादा बेशर्मी और अन्धेरकी कौनसी बात हो सकती है कि शवको गुसलखानेमें 'लक्स सोप, और इतर लगाकर नहलाया जाय। मालूम पड़ता है। प्रोफेसर साहबका दिमाग खराब हो गया है।'—एक दूसरे आदमीने कहा।

'और इनकी आँखोंमें मुझे एक आँसू तक नहीं दिखाई दिया। हाय, ऐसी देवीका यह अपमान! मैं जानता हूँ, प्रोफेसर साहब अपनी स्त्रीको प्राणोंसे भी अधिक चाहते थे। इस बीमारीमें विद्वान्से विद्वान् भी रोगीके पास नहीं फटकता, किन्तु मैंने प्रोफेसर साहबको सदा अपनी स्त्रीके सिरहाने बैठे देखा। उनका थूक और खखार भी वे कभी-कभी अपने हाथ पर लेकर फेंक देते थे। यद्यपि मैंने कई बार उन्हें समझाया कि ऐसा मत किया करो। यह छूतकी बीमारी है। घर-के-घर तबाह कर डालती है। इसपर प्रोफेसर साहब केवल हँसते और कहते—'मोहन बाबू! आखिर मनुष्यता भी तो कोई चीज है! क्या टी० बी० मनुष्यतासे भी बढ़कर है? मैं अमर थोड़े ही हूँ। आज मरा या कल, मरना जरूरी है। मृत्युको कोई टाल नहीं सकता। यदि मनुष्यताके लिये मेरे प्राण तक चले जायँ, तो वह एक सुन्दर मृत्यु होगी। मानवताका अपमान कर दानवता और घृणाका चोगा पहनकर मुझे अमर रहना भी पसन्द नहीं। फिर आप जानते हैं, नलिनी मुझे कितना चाहती है। हमलोग अब तक एक पलको भी अलग नहीं हुए। नलिनीका चेहरा मुझे देखकर

खुशीसे खिल उठता है। डाक्टर भी मुझसे कहते हैं कि मरीजसे दूर-दूर रहा करो। खैर, उन हृदयहीनोंकी बात जाने भी दीजिये। नलिनीने भी मुझसे कई बार कहा कि आप मेरे पास अधिक मत आया कीजिए। यह बीमारी बड़ी खराब है। मुझे आप बन्दूकवाला फोटो दे दीजिये। जब मैं कालेज गया, तो मेरी अनुपस्थितिमें उसने अपने भाईसे उसे एलबमसे निकलवा भी लिया। मेरे आते ही वह मुझसे मुस्कराती हुई बोली—'देखिए न, आप तो मेरे पास हैं ही। जब आप कालेजमें होते हैं, तब भी मैं आपको अपने ही पास देखती हूँ और वास्तवमें आप मेरे पास होते भी हैं।' अब आप अधिक मेरे पास मत आया कीजिये। माताजी वगैरह गुस्सा होती हैं।' किन्तु मोहन बाबू, मैं किसीकी परवा नहीं करता।'

'यह ठीक है' एक तीसरे व्यक्तिने कहा—'किन्तु इतने अच्छे प्रो० रामनाथको आज हो क्या गया ? अरे भाई, कहीं इस तरह मृतक-संस्कार किया जाता है! यदि कहीं आज इनके बाबूजी घर पर होते, तो इनकी आफत कर देते! फिर देखते कि लड़ा सूट-बूट पहनकर कैसे कपाल-क्रिया करता। अच्छा ही हुआ, जो वे परसों बम्बई चले गये।

लेकिन भाई, इसका मुझे भी बड़ा ताज्जुब है कि प्रोफेसर साहब इतने काबिल होते हुए भी दुनियादारीके खिलाफ ऐसा कार्य क्यों करते हैं ? सूट-बूट पहनकर आग देनेमें तो कोई प्रेम भी प्रकट नहीं होता। फिर इनकी आँखोंमें एक आँसू भी नहीं।'

'भाई साहब, मैंने तो यह सुना है कि अब यह कालेजकी किसी लड़कीसे विवाह करनेवाले हैं। आजकल के प्रोफेसर भी ऐसे ही हैं। मालूम नहीं आपको ? अरे भाई, प्रो० हरनाम सिंह भी कितने बनते थे। सभी लड़कियोंको अपनी बहन-बेटियाँ ही समझते थे। किन्तु उनकी मक्कारी और धूर्त्तताका पता तो उस रोज चला, जब मिस नीडके पिताने उनपर 'रेप-केस' चलाया। तबसे कोई भी शरीफ लड़की उनसे कुछ पूछने नहीं जाती। क्या पता, इन्होंने भी कुछ ऐसा ही मामला गाँठ रखा हो।' एक चौथे आदमीने मोहन बाबूकी ओर आँख मारते हुये कहा।

'हो सकता है भाई ! आजकल इन प्रोफेसरोंके पौ-बारह हैं।'

२

दो सप्ताह बाद प्रो० रामनाथ अपने कमरेमें बैठे सिसक-सिसककर रो रहे थे। सामने बगीचेमें एक कपोत अपनी कपोतीसे छेड़छाड़ कर रहा था। प्रो० रामनाथ उसे गौरसे देखने लगे। जरा देरमें ही कपोती एक झाड़ीमें जाकर छिप गयी। प्रोफेसर साहबने देखा—कपोत कपोतीको उद्विग्न हो इधर-उधर ढूँढ़ने लगा और अधिक देर तक ढूँढ़नेके उपरान्त भी जब वह न मिली, तो कपोत विचित्र प्रकारसे कातर स्वरमें बोलने लगा। प्रो० रामनाथ अपने आँसू न रोक सके। वे सोचने लगे—यह कपोत अपनी कपोतीके लिये कितना बेचैन है ! दुःखके मारे यह अपना सिर पटक रहा है। एक मैं हूँ जिसे अपनी स्त्रीके

लिये खुलकर रोनेका भी अधिकार नहीं। बीमारीमें उसके पास जी-भर बैठनेकी आज्ञा नहीं। मैं मनुष्य हूँ, पर पक्षी-सा नहीं। यह पक्षी है, पर मनुष्य-सा नहीं। अब मुझे दुनियाका यह झमेला अच्छा नहीं लगता। मेरी साक्षात् लक्ष्मी-सी नलिनी चली गयी और मुझे जी भर उससे बोलने भी नहीं दिया गया। जिन भोले बच्चोंको नलिनीने नौ महीने अपनी कोखमें रखा, उन्हें वह देखने तकको तरसती रही। पिताजीने एक को भी उसके पास फटकने नहीं दिया। जब वह पीड़ा अधिक होनेके कारण मुझे बुलाती थी, तो मा मुझे उसके पास न जानेका आदेश दिया करती थीं। पिताजीने बम्बईसे लौटनेसे पहले ही मुझे डांटना शुरू कर दिया—मानो मैंने कोई बड़ा भारी जुर्म किया हो। दुनियावाले मुझे दोष देते हैं, तो दें। क्या मैं दुनिया-वालोंके डरसे अपनी प्राणप्यारीकी अन्तिम इच्छा भी पूरी न करता। मरते समय उसीने तो कहा था कि तुम मेरे मरनेपर मुझे स्वयं अपने हाथों, अपने ही स्नानागारमें नहलाना, इत्र लगाना और बिना सिर मुड़ाए, सूट-बूट पहनकर मुझमें आग लगाना। यदि ऐसी हालतमें मैं मा-बापका कोपभाजन भी बनूँ, तो मुझे परवा नहीं। मैं प्रोफेसर हूँ। डी० लिट० की डिग्री भी मुझे एक 'थीसिस' पर मिली है। फिलासफीका डाक्टर तो मैं हूं ही। माता-पिता अमीर हैं; किन्तु वे धनके शासक होनेकी अपेक्षा धनसे शासित हैं। वाह री दुनिया! जिसे कभी फूलके समान रखा गया, उसे टी० बी० होनेपर दूधकी मक्खीके समान

निकालकर फेंक दिया गया। उसके त्याग, तपस्या और प्रेमका कोई मूल्य नहीं। जिसे वह प्राणोंसे भी अधिक चाहे, वही उससे पीछा छुड़ानेकी कोशिश करे। तो क्या तपेदिकके सामने मनुष्यता और दयाको बिलकुलही तिलांजलि दे दी जाय ? मनुष्य मनुष्यसे घृणा करे और इसके रोगीको गोली मार दे ? सान्त्वना का जनाजा ही निकाल दे ? इसका रोगी दानवताका बिकट अट्टहास सुने और हम दया-धर्मके ठेकेदार, मनुष्य कहलानेवाले जीव उसकी तरफसे अपनी आँखें मींच लें ? धिक्कार है ऐसे मनुष्योंको !

बस, फिर प्रो० रामनाथ आवेशमें उठे और उन्होंने दो पत्र बड़ी शीघ्रतासे लिखे।

दूसरे दिन प्रातःकाल नौ बज जानेपर भी जब प्रो० रामनाथ अपने कमरेसे निकलकर बाहर न आये, तो उनके पिताको चिन्ता हुई। वे हड़बड़ाकर उनके कमरेमें गये। वहाँ उन्हें प्रोफेसर साहब तो न मिले, किन्तु मेजपर पड़े हुए उन्हें दो पत्र अवश्य मिले। पहला पत्र उन्हींको सम्बोधित कर लिखा गया था :—

"आदरणीय पिताजी,

मुझे क्षमा करना, मैं आपसे बिना मिले ही जा रहा हूँ, और शायद इसीमें मेरा हित है। आप यह न समझना कि मैं किसी नदी-नालेमें जाकर डूब मरूँगा, या रेलसे कटकर आत्महत्या कर लूँगा। आपने मुझे जो उच्च शिक्षा दिलवाई है वह मुझे ऐसा घृणित कार्य कदापि नहीं करने देगी। मैं आज उन गरीब मरीजों

की दुनियामें जा रहा हूँ जिनसे आप घृणा करते हैं। मैं आज उन टी० बी० के रोगियोंका हाथ पकड़ने जा रहा हूँ, जिन्हें उनके प्रियजनोंने दूधकी मक्खीके समान निकालकर फेंक दिया है और जिन्हें स्वस्थ कहलानेवाले जीव, नारकीय कीड़ोंसे अधिक महत्व नहीं देते। पिताजी, मैं आजसे उनका होने जा रहा हूँ, जिनके बहुमूल्य आँसुओंकी कीमत दुनियावाले जानते ही नहीं। दूसरा पत्र मेरा इस्तीफा है, इसे कालेज भेजवा देना। रमेश और नरेश की मुझे अब चिन्ता नहीं, क्योंकि वे एक अमीर बाबाके नाती हैं। मुझे तो देशमें हजारों गरीब रमेश और नरेश मिल जायँगे और यदि मैं उन्हींकी सेवा में अपना अस्तित्व मिटा सका, तो मैं अपने अहो भाग्य समझूँगा। सूट-बूट पहनकर आग देनेमें भी एक रहस्य था। वह नलिनीकी अन्तिम इच्छा थी और उसका मैंने अक्षरशः निर्वाह किया। आशा है, आप मुझे क्षमा करेंगे। मुझे ढूँढ़नेकी चेष्टा अब आप भूलकर भी न कीजिएगा, क्योंकि मैं एक तपेदिककी रोगिणीका पति हूँ।

आशा है, मुझे आप सच्चे हृदयसे आशीर्वाद देंगे ताकि मैं अपने कार्यमें सफल हो सकूँ। बस, अन्तिम प्रणाम।

आपका,

रामनाथ,

और उसी दिन दोपहरको, रायबहादुर श्यामनाथके सुपुत्र प्रो० रामनाथके लापता होनेकी खबर बिजलीकी तरह सारे शहर में फैल गयी।

---